# कुरुक्षेत्र

दिसम्बर, 1992

पांच रुपये

प्राकृतिक आपदाओं से कैसे निपटें

वर्ष 38 अंक 2 अग्रहायण-पौष शक 1914

# कुरुक्षेत्र

## ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि के भेजिए । अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है । 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 से कीजिए ।

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल सूथरा
उप संपादक : ललिता जोशी

विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : शकुंतला
उत्पादन अधिकारी : के.आर. कृष्णन्
आवरण :
साज-सज्जा : आशा सक्सेना

एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चन्दा : 30 रु०

फोटो साभार : फोटो प्रभाग, रमेश चन्द्र
ग्रामीण विकास मंत्रालय

## विषय सूची

प्राकृतिक आपदाओं के बीच जीना सीखें 2
**रामजी प्रसाद सिंह**

सूखे की समस्या एवं उपचार 7
**डॉ० बद्री विशाल त्रिपाठी**

ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के उपाय 11
**नवीन पन्त**

प्राकृतिक आपदाएं कारण और निवारण 14
**शैलेन्द्र**

सूखा-अति कष्टदायी प्राकृतिक आपदा 16
**डॉ० राकेश अग्रवाल**

प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के स्थायी उपाय 20
**सत्यपाल मलिक**

आवश्यक है सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम व मरुभूमि विकास कार्यक्रम की सफलता 22
**राजेश कुमार व्यास**

प्राकृतिक आपदाओं से निपटने हेतु सामूहिक प्रयास 24
**डॉ० सी.एम. चौधरी**

सूखा सोख लेता है सुख-चैन को 29
**वेद प्रकाश अरोड़ा**

प्राकृतिक विपदाएं : बचाव के उपाय 34
**प्रदीप पन्त**

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य योजना 37

बंटवारा (कहानी) 39
**कन्हैया लाल मत्त**

प्राकृतिक आपदाएं समस्या और समाधान 41
**विनय जोशी**

विनाशकारी प्रकोप : एक राष्ट्रीय अवलोकन 44
**जे. वैंकटेश्वर लू**

विकास के लिए बाढ़ नियंत्रण आवश्यक 49
**सुनीता शर्मा**

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो ।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें । दूरभाष : 384888

# प्राकृतिक आपदाओं के बीच जीना सीखें

□ रामजी प्रसाद सिंह □

बाढ़, सूखा, भू-स्खलन, भूकम्प, तूफान, बवंडर इत्यादि मनुष्य की नियति है। इससे बचने के लिए अनेक उपाय किये जा रहे हैं। संसार के वैज्ञानिकों द्वारा इस संदर्भ में निरंतर अनुसंधान-अन्वेषण किया जा रहा है। परन्तु, निकट भविष्य में कोई चमत्कार की आशा नहीं है।

यह भी उम्मीद करना कि सरकार इन प्राकृतिक आपदाओं को रोक देगी अथवा राहत का पूरा-पूरा प्रबन्ध करेगी व्यर्थ है। सरकार अपना दायित्व निभाती है, परन्तु उसकी सीमा है। स्वयं मनुष्य को प्राकृतिक आपदाओं के लिए कृतसंकल्प होना होगा। इसी के आधार पर विपदाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। भूकम्प के भयानक झटकों के बावजूद जापान आज दुनिया की सबसे शक्तिशाली ताकत है। एटम बम भी उसे नष्ट नहीं कर सका।

सम्पूर्ण पृथ्वी को निरापद बनाने के लिए विश्व-व्यापी प्रयास जारी हैं। हाल ही में ब्राजील की राजधानी रियो में 13-14 जून तक संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा पृथ्वी-शीर्ष सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें राष्ट्रसंघ के 175 सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्षों/शीर्ष नेताओं के अलावा स्वयंसेवी संगठनों के करीब 10 हजार प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इसमें पृथ्वी की जीवनदायिनी शक्ति में निरन्तर ह्रास को रोकने के लिए रणनीति बनायी गयी ताकि हमारी यह धरती अपनी संतान को सुखी रख सके। इस धरा को सुन्दर और शिव बनाने का संकल्प क्यों लिया गया। इसलिए कि- हम लोग, चाहे अत्यंत विकसित देश के निवासी हों अथवा विकासशील देश के, इस धरती की जीवन-दायी शक्तियों को निरन्तर नष्ट करते जा रहे हैं। प्राणियों के जीवन के लिए पर्यावरण को शुद्ध रखना जरूरी है। शुद्ध पर्यावरण के बिना विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। यह केवल भारत जैसे विकासशील देश पर नहीं, जापान और अमरीका जैसे अत्यंत विकसित देश पर भी लागू होता है।

**भू-मंडल**

पृथ्वी की जीवन-दायिनी शक्ति के ह्रास के फलस्वरूप हर साल जीव-जन्तुओं की 50 हजार प्रजातियां लुप्त हो रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित आंकड़े बताते हैं कि संसार में कम से कम एक सौ सत्तर (170) लाख हेक्टेयर जमीन पर आच्छादित वनों को नष्ट किया जा रहा है अर्थात् हर साल एक सऊदी अरब को उजाड़ दिया जाता है। उसकी हरियाली नष्ट कर दी जाती है। उसे मरुभूमि बना दिया जाता है। इसी तरह प्रदूषण पैदा करने वाले कार्बन डाईऑक्साइड, जिनकी मात्रा कम से कम 8 खरब टन होती है, हर साल वायुमंडल में छोड़े जाते हैं। नदियों और जलाशयों के मार्फत हर साल कम से कम 62 लाख टन कचरा समुद्र में फेंका जा रहा हैं, जिसके कारण मछलियां और अन्य जलचर विषाक्त होते जा रहे हैं।

धरती जिसे हम लोग माता कहते हैं समयुक्त विकास के इस युग के पहले अपनी सम्पूर्ण संतान का भरण पोषण करती थी, परन्तु आज संसार की करीब एक खरब आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। गरीबी स्वयं प्रदूषक होती है। इसमें गरीबों की बढ़ती हुई जनसंख्या, स्थिति को और अधिक विषम बनाती जा रही है। संसार की जनसंख्या में दस करोड़ की वृद्धि भयानक है। अकेले भारत में, ऑस्ट्रेलिया के बराबर जनसंख्या हर साल बढ़ जाती है। एक ओर पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति घट रही है, दूसरी ओर इसका बोझ बढ़ता जा रहा है। नतीजा क्या होगा ? धरती क्यों नहीं कांपेगी ? भूकम्प क्यों नहीं होगा ? भू-स्खलन क्यों नहीं होगा ?

**धरा को बचाओ**

पूंजी चुक जाती है, तो साहूकार दिवालिया हो जाता है। इसी तरह धरती की शक्ति क्षीण हो जायेगी तो यह धरा रहने के लायक नहीं रहेगी। हमारी सम्पूर्ण संतति नष्ट हो जायेगी। सारे प्राणियों का अंत हो जायेगा। इसीलिए संसार में 'धरा को बचाने' के लिए राष्ट्रसंघ द्वारा लगभग 20 वर्षों से एक विश्व अभियान चलाया जा रहा है।

इसमें हम आप सब भागीदार हो सकते हैं। पृथ्वी की रक्षा अथवा प्रकृति की रक्षा, प्रकृति से प्रेम, प्रकृति की सुषमा की रक्षा, इसकी हरीतिमा की रक्षा इसी के बल पर संसार प्राकृतिक आपदाओं से मुक्त होगा। धरती की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी।

प्राणियों को भरपेट भोजन मिलेगा। पर्याप्त वर्षा होगी। अनावृष्टि दूर होगी। अतिवृष्टि की विभीषिका को सहन करने की शक्ति मिलेगी। अकाल की पुनरावृत्ति नहीं होगी। गरीबी दूर होगी। जलवायु शुद्ध होगी। स्वभावतः मनुष्य स्वस्थ और निरोग होगा। दीर्घायु होगा। विपन्नता दूर होगी। उत्पादकता बढ़ेगी। स्वभावतः सुख-सुविधा और सम्पन्नता बढ़ेगी।

पर्यावरण में संतुलन आने से बाढ़ और सूखे की स्थिति भी दूर होगी, भूकम्प भले ही दूर न हो। परन्तु भूकम्प की विभीषिका, 10-15 साल में एक बार आती है लेकिन बाढ़ और सूखे का प्रकोप किसी न किसी भाग में हर साल होता है।

**भारत**

भारत के कुछ भागों में सतत् सूखे की स्थिति रहती है तो कुछ भागों में हर साल बाढ़ का प्रकोप होता है। इन्हे नियंत्रित करने के अनेक उपाय किये गये हैं किन्तु अपेक्षित लाभ नहीं मिला। अनेक नदियों पर कुतुब मीनार की ऊंचाई के बांध बांधे गये ताकि वर्षा के जल को समय सुकाल देखकर नदियों में छोड़ा जाये। अकाल के समय उपयोग के लिए जलाशयों में जल के भंडार कायम रहें। जल-विद्युत संयंत्र लगाये जायें और देश में ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति की जाय। बाढ़ का जल नियमित रहे और अभाव के समय उसका उपयोग सिंचाई के लिए किया जाय।

सरकार ने बाढ़ पैदा करने वाली नदियों को नियंत्रित करने का काम पहली पंचवर्षीय योजना काल में ही शुरू कर दिया था। यद्यपि इस दिशा में सघन काम 1954 की बाढ़ विभीषिका से साक्षात्कार के बाद शुरू हुआ।

**बाढ़**

देश के कुल क्षेत्र का आठवां भाग बाढ़ की आशंका वाला भाग है। अतः सन् 1954 की बाढ़ नियंत्रण योजना के तहत, नदियों पर बांध लगाने, बाढ़ के जल की शीघ्र निकासी के लिए निकास-मार्ग बनाने, तटों के कटाव रोकने के उपाय करने, नदियों की धाराओं को नियंत्रित मार्ग से बहने के लिए तटबंधों का निर्माण और सुधार करने, बाढ़ के स्तर से बहुत नीचे बसे हुए गांवों को हटाने अथवा उसके चारों ओर मुद्रिका बांध लगाने, बाढ़ से प्रभावित होने वाले गांवों की सतह को ऊंचा करने आदि की अनेक परियोजनायें बनायी गयीं इनमें कुछ तात्कालिक कुछ अल्पकालीन और कुछ दीर्घकालीन योजनायें थीं।

इन पर सातवीं योजना काल तक करीब 2700 करोड़ रुपये खर्च किये गये। इसके फलस्वरूप बाढ़ से प्रभावित होने वाली करीब 320 लाख हेक्टेयर जमीन में, 140 लाख हेक्टेयर जमीन को बाढ़ से बचाने का प्रबन्ध किया गया।

इस क्रम में, 15467 किलोमीटर तटबंध बनाये गये तथा 30199 किलोमीटर नाले (निकास मार्ग) बनाये गये।

इसी दौरान 765 नगरों और कस्बों को बाढ़ से बचाने के लिए तटबन्ध इत्यादि बनाये गये अथवा पुराने तटबंधों को मजबूत किया गया। करीब पांच हजार गांवों की सतह को बाढ़ के स्तर से ऊंचा किया गया।

तूफान के प्रकोप से केरल और आन्ध्र में समुद्री तट पर भारी भू-क्षरण और भयंकर बर्बादी होती थी। अतएव केरल के 320 किलोमीटर समुद्र तट की सुरक्षा के लिए अनेक प्रकार के निर्माण कार्य किये गये।

अकेले उत्तरी बिहार में कोसी और गंडक की बाढ़ से बचाव के लिए 364 करोड़ रुपये की लागत से 3432 किलोमीटर तटबंध (1955 से 1987) बनाये गये। फिर भी, उत्तर बिहार को बाढ़ प्रकोप से छुट्टी नहीं मिली। उल्टे बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र बढ़ गये। पहले जहां 12 लाख हेक्टेयर जमीन बाढ़ से प्रभावित होती थी, 1984 में 27 लाख हेक्टेयर जमीन जल-मग्न हो गयी। इसके अनेक कारण हैं।

बाढ़ नियंत्रण की व्यापक योजना के बावजूद 1990 के वर्षाकाल में बिहार, बंगाल, असम, गुजरात, राजस्थान के जोधपुर क्षेत्र और उत्तर प्रदेश के गढ़वाल में बाढ़ का भयंकर प्रकोप हुआ। इन राज्यों की करीब 162 लाख आबादी बाढ़ से प्रभावित हुई। इसमें सरकारी आंकड़ों के अनुसार 28 करोड़ रुपये की फसल नष्ट हुई। साथ ही, 882 व्यक्ति डूब मरे। करीब सवा लाख पशु भी मारे गये। सड़कों, पुलों और भवनों को करीब 41 करोड़ रुपये की क्षति का अनुमान किया गया।

**निष्कर्ष**

इससे यह सिद्ध है कि महानदी पर हीराकुण्ड बांध, महानंदा घाटी योजना, व्यास नदी पर पोंग बांध, सतलुज पर भाखड़ा बांध या ताप्ती पर उकई योजना, दामोदर बांध बांधने और बड़ी-बड़ी परियोजनाओं को लागू करने अथवा कोसी या गंडक नदियों के किनारे बड़े-बड़े तटबंधों के निर्माण मात्र से, बाढ़ पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता।

बांधों के कारण नदियों के तल में गाद भर जाती है। इसके कारण उनकी जलभंडारण क्षमता हर साल घटती जाती है। यही

हाल जलाशयों का होता है । वनों की लगातार कटाई से बाढ़ के जल की गति तेज हो जाती है तथा उत्पात करने की क्षमता बढ़ जाती है ।

तटबंधों के अचानक टूट जाने के कारण भी आस पास में अक्सर बाढ़ का प्रकोप हो जाता है ।

इसलिए जरूरी है कि जहां सरकार अपना काम करती है, प्रत्येक नागरिक को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि जंगलों की अनावश्यक कटाई न हो । भ्रष्ट जंगल अधिकारी के साथ सांठ-गांठ करके यदि कोई व्यवसायी अथवा असामाजिक तत्त्व. जंगलों की कटाई कर रहे हों, तो उन्हें रोकने के लिए, जंगल विशेष के आस पास के नागरिकों को एकजुट हो जाना चाहिए । स्वयं भी तटबंधों को मजबूत करने के लिए तटबंधों पर वृक्ष लगाना आदि तथा वृक्षों को क्षति पहुंचाने वालों पर नजर रखनी चाहिए ।

गढ़वाल में महिलायें पेड़ों से चिपक जाती हैं और काटने वालों को मार भगाने की चेष्टा करती हैं । इसीलिए, इस आन्दोलन को चिपको आन्दोलन की संज्ञा मिली है । इस आन्दोलन के संचालक श्री सुन्दर लाल बहुगुणा को अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं । हमें इस आन्दोलन का अनुकरण करना चाहिए ।

हम लोगों को बाढ़ के जल की निकासी के लिए बनाये गये मार्गों अथवा नहरों की रक्षा का भी व्रत लेना चाहिए । उसके टूटने से कहीं बाढ़, तो कहीं जल के जमाव की स्थिति पैदा हो जाती है ।

हमें अपने अपने गांव में जल का भंडार बनाने वाले पोखरों के तटों को सुरक्षित रखने की चेष्टा करनी चाहिए । उसमें किसी प्रकार का क्षरण नहीं होने देना चाहिए । उसके चारों ओर वृक्ष लगाने से उसकी सुरक्षा बढ़ेगी । साथ ही गांव का पर्यावरण शुद्ध होगा । फल, फूल, गोंद, बीज, औषधियां, जलावन इत्यादि सुलभ होंगे तथा मकान बनाने के लिए लकड़ियां भी मिलेंगी ।

गांवों को बाढ़ से बचाने के लिए प्रायः हर गांव में किसी न किसी तरह का अलंग या बांध होता है । उसकी देख-रेख की जाय । उसके नाजुक स्थानों पर वर्षा के पहले दो-चार बाल्टी मिट्टी डाल दी जाय तो बाढ़ के समय उसके टूटने की संभावना दूर हो जाती है । बांधों और तटबंधों पर चूहों की मांदें बंद कर दी जायें । बाढ़ के समय, वे ही बांधों के टूटने का कारण बन जाती है । सैकड़ों गज का बांध बह जाता है ।

**बचाव के अन्य उपाय**

बरसात में, बाढ़ की विभीषिका से रक्षा के लिए नागरिकों को जहां भी सुलभ हो, आकाशवाणी और दूरदर्शन के समाचार जरूर सुनने चाहिए । मौसम का समाचार देने की परिपाटी भारत में बहुत पुरानी है पंचांगों में भी मौसम के सम्बन्ध में पूर्व अनुमान दिये जाते थे । भारत सरकार ने मौसम के बारे में जनता को पूर्वानुमान बताये जाने का प्रबन्ध सौ वर्ष पहले शुरू किया था । किन्तु आजकल इसमें काफी सुधार हुआ है । अब उपग्रह के जरिये मौसम की स्थिति की सूचना एकत्र की जाती है और कम्प्यूटर के जरिये उसका विश्लेषण करके, आकाशवाणी और दूरदर्शन से उसका पूर्व अनुमान घोषित कराया जाता है । मौसम की सूचना प्राप्त करने के लिए 157 केन्द्र स्थापित किये गये हैं । वहाँ से प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करने के लिए 72 केन्द्र स्थापित किये गये हैं । 500 अन्य स्थानों में मौसम सम्बन्धी सूचनाएं एकत्र की जाती हैं । इनमें चार सौ से अधिक केन्द्रों से बेतार के यंत्र द्वारा सूचनायें मंगायी जाती हैं । आपात स्थिति में मौसम की सूचना देने के लिए जगह-जगह नियंत्रण केन्द्र स्थापित किये जाते हैं । बड़ी बड़ी नदियों में बाढ़ के स्तर के बारे में प्रतिदिन रिपोर्ट तैयार की जाती है और समाचार पत्रों में उन्हें प्रकाशित किया जाता है ।

जन साधारण, विशेष कर प्रबुद्ध नागरिकों को इस पर ध्यान देना चाहिए और अपने अपने क्षेत्र में बाढ़ से बचाव का पूर्व प्रबन्ध करना चाहिए इसी तरह अनावृष्टि या अतिवृष्टि के अनुकूल फसलों की बोवाई करनी चाहिए । यदि अधिक वर्षा का अनुमान हो, तो जुलाई और अगस्त में कोई फसल नहीं लगानी चाहिए । बाद में जो भी फसल लगायेंगे उसकी उपज दूनी होगी, क्योंकि बाढ़ अपने साथ उपजाऊ मिट्टी लाती है जो खाद का काम करती है ।

भारत सरकार ने नेपाल से भारत आने वाली नदियों में बाढ़ की स्थिति का अध्ययन करने के लिए 45 केन्द्रों की स्थापना की है ।

**सुखाड़**

यह सर्वविदित है कि भारत का लगभग एक तिहाई भाग अक्सर सुखाड़ के चपेट में आता है । सर्वाधिक सुखाड़ राजस्थान में होता है जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और गुजरात के भी कुछ भागों में सूखा पड़ा करता है ।

अद्यतन सूचना के अनुसार देश के 21 जिलों के 131 प्रखंडों में सतत सुखाड़ की स्थिति होती है । इसके अन्तर्गत 362 लाख वर्ग किलोमीटर जमीन आती है और करीब डेढ़ करोड़ की जनसंख्या प्रभावित होती है । इन क्षेत्रों में वर्षा औसत से एक चौथाई कम होती है । इन क्षेत्रों की विशेष स्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने 1973 में सूखा-प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम आरंभ किया । इसका लक्ष्य यह रखा गया कि मरुभूमि का विस्तार रोका जाय । मरुस्थलों में घास-फूस और झाड़ियां लगाकर इसकी जमीन की नमी की यथा संभव रक्षा की जाये । इन क्षेत्रों में जल की आपूर्ति बढ़ाई जाय, इसके अन्तर्गत आने वाली जमीन की उर्वरा-शक्ति की जांच कराकर इसका अधिकतम उपयोग किया जाय । इसकी भूमि में उपयुक्त फसल उगाने की तकनीक और प्रौद्योगिकी का विकास किया जाय ताकि भूमिक्षरण को रोका जाय । ऊबड़-खाबड़ जमीनों को समतल किया जाये । बंजर भूमि का उपयोग किया जाय । वहां के प्राकृतिक साधनों का इष्टतम उपयोग किया जाय । प्रत्येक क्षेत्र के विकास के अनुकूल विशेष परियोजना बनायी जाय तथा इस क्षेत्र के निवासियों को आमदनी बढ़ाने के लिए वैकल्पिक धंधों में लगाया जाय विशेषकर वृक्ष लगाने, चारागाह बनाने और पशु-पालन उद्योग चलाने की सीख दी जाय ।

इसी तरह का कार्यक्रम उन क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है, जहां हर साल नहीं, परन्तु दो-तीन साल में सूखे का प्रकोप जरूर होता है । सन् 1982 के सर्वेक्षण के अनुसार ऐसे प्रखंडों की संख्या 615 है, जो विभिन्न 91 जिलों में स्थित हैं । कुल 554 लाख वर्ग किलोमीटर के इस क्षेत्र की आबादी करीब पौने आठ करोड़ है ।

**मरुभूमि-विकास**

मरुभूमि विकास के कार्यक्रम पर शत प्रतिशत धनराशि, भारत सरकार खर्च करती है । मरुभूमि अधिकांश राजस्थान में है । परन्तु कुछ अन्य राज्यों के कुछ क्षेत्रों को भी मरुभूमि करार दिया गया है । इसके अन्तर्गत 21 जिलों के 131 प्रखंड आते हैं, जिनमें करीब डेढ़ करोड़ नागरिक बसते हैं । इस पर अब तक करीब 300 करोड़ रुपये खर्च हुए हैं । इनमें 200 करोड़ सातवीं योजना के अंत तक खर्च हुआ था मरुभूमि में खेती के लिए कृषकों को 50 प्रतिशत तक की सहायता दी जाती है ।

यह योजना तभी सफल होगी, जब कि प्रबुद्ध वर्ग के लोग इसमें दिलचस्पी लेंगे । वे स्वयं मरुभूमि में खेती के लिए अग्रसर होंगे । राजस्थान के इंदिरागांधी नहर से जहाँ पानी मिलने लगा है, वहां के किसान, पंजाब को मात दे रहे हैं ।

**भूकम्प**

भूकम्प के कारणों का पता लगा लिया गया है । परन्तु उसकी पूर्व सूचना देने की विधि अभी तक नहीं निकाली गयी है । दुनिया के वैज्ञानिक इस ओर लगे हुए है । भारत में उत्तर प्रदेश के रुड़की विश्वविद्यालय में भी इस दिशा में व्यापक अनुसंधान हो रहा है । परन्तु, उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली है । आशा व्यक्त की गयी है कि अगले दशक तक भूकम्प की भी पूर्व सूचना दी जा सकेगी । इसके बाद भूकम्प से प्रभावित होने वाले क्षेत्रों के नागरिकों को अपना बचाव करने में सुविधा होगी ।

भूकम्प का पूर्व अनुमान हो गया होता तो गत वर्ष 4 अक्तूबर को गढ़वाल (उत्तर प्रदेश) के उत्तरकाशी में जान-माल की उतनी क्षति नहीं होती । वहां सैंकड़ों व्यक्ति मारे गये थे ।

निष्कर्ष यह कि निकट भविष्य में हमें प्राकृतिक आपदाओं से छुट्टी नहीं मिलने वाली है । हमें इनसे निबटने के लिए कटिबद्ध रहना पड़ेगा ।

इससे सबसे अधिक सहायक होगी, अपनी संकल्प-शक्ति हमारी आध्यात्मिक शक्ति जो हमें सुख-दुःख के समान भाव से रहने की सीख देती है । इसे आत्मिक शक्ति कहें अथवा परमात्मिक । यह हमें संकटों से लड़ने की सीख देती है । इसीलिए अमर साहित्यकार प्रेमचंद ने कहा "बाधाओं से बचने के बजाय हमें उससे लोहा लेने के लिए तत्पर होना चाहिए ।"

प्रेमचंद ने जवानों को सीख दी । तुम नदी के किनारे नाव का इंतजार नहीं करो । उछलती लहरों पर सवार हो जाओ । नाव मिले भी तो ठुकरा दो, धारा उत्तर की ओर हो तो दक्षिण की ओर बढ़ने की चेष्टा करो । बाधायें न हों तो उसका सृजन करो ।

इसका तात्पर्य नहीं कि व्यर्थ का झगड़ा मोल लो । निर्माण के बदले विध्वंस का मार्ग पकड़ो ।

प्रेमचन्द का कहना है कि बाधाओं से जूझो । अंधकार से लड़ो प्रकाश मिलेगा । युद्ध करो, विजय मिलेगी ।

बाढ़, सुखाड़ भूकम्प, बवंडर, तूफान सभी से इंसान मुकाबला करता है । शनैः शनैः इस पर विजय प्राप्त कर रहा है ।

आईये, हम सभी अधिक से अधिक वृक्ष लगायें ताकि बाढ़ से अपने खेतों की उर्वरा-शक्ति के क्षरण को बचा सकें । सुखाड़

को भगा सकें ताकि हमारे मजदूर और किसान– उठा कुदाल बाजुओं का जोर आजमा सकें ।

हम अपने अपने गांव में एक साल में नहीं तो दस साल में किसी स्थान पर गोवर्धन टीला बनायें, जिस पर बाढ़ के समय आश्रय लिया जा सके । बरसात के समय गांव के आस पास तट बंधों की निगरानी करें ताकि वे टूट न पायें ।

गांव के जलाशयों, सरोवरों और पोखरों में गाद जमने न दें तथा उसके किनारों की मरम्मत करें । सूखा या बाढ़ के कारण जिन खेतों की फसलें नष्ट हो गयी हों, उनमें वैकल्पिक फसल लगाने के लिए पास के कृषि विज्ञान केन्द्र अथवा प्रखंड विकास कार्यालय की सलाह लें । उन्नत बीज उपलब्ध करें तथा अबोध किसानों को दें । उर्वरकों-विशेष कर रासायनिक उर्वरकों के ठीक-ठीक उपयोग के तरीकों से लोगों को अवगत करायें ।

हमारे किसान-मजदूरों में ज्ञान की नैसर्गिक ज्योति प्रदीप्त रहती है । परन्तु वे निरक्षर हैं । हम पढ़े-लिखे प्रबुद्ध नागरिकों को उन्हें साक्षर बनाने का व्रत लेना चाहिए । अगर हममें से प्रत्येक ऐसा कर सके तो दस वर्षों में निरक्षरता का कलंक देश से मिट जाये ।

दुर्भाग्य की बात है कि आकाशवाणी, दूरदर्शन या समाचार पत्रों द्वारा मौसम सम्बन्धी सूचनायें जनभाषा में नहीं दी जाती हैं । अतएव क्षेत्र या गांव विशेष की शिक्षित आबादी का यह कर्त्तव्य है कि मौसम के बारे में संचार-माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं से जनता को उनकी समझ में आने वाली भाषा से अवगत करायें ।

किसान भाइयों को खेती के उत्तम तरीकों के बारे में घाघ और भड्डरी जैसे अनेक लोक कवि बताते रहे हैं– जिसकी मेंड़, उसकी खेती । आज के कृषि वैज्ञानिक भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जिनकी मेंड़ मजबूत होगी, उनके खेतों की उपजाऊ मिट्टी (ऊपरी सतह) सुरक्षित रहेगी । अतः उसकी रक्षा करें ।

आकाशवाणी, रेडियो और समाचार-पत्रों के माध्यम से कभी-कभी बाढ़, तूफान और बवंडर के बारे में पूर्व सूचना दी जाती है कि अमुक इलाके पर खतरा है । उन इलाकों से हटकर सुरक्षित स्थान पर चले जायें । इस तरह की सूचना जिन्हें मिले, ढोल पीटकर इसे प्रचारित करें । अलबत्ता यह देख लें कि कोई बदमाश आतंक फैलाने या गांव को लूटने के लिए कोई दुष्प्रचार तो नहीं कर रहा है ।

आप कभी यह यह न समझें कि प्रकृति का प्रकोप केवल भारत पर हो रहा है । पूर्वी इंग्लैण्ड धंसा जा रहा है । लंदन में अतल के जल, गगनचुंबी इमारतों की नींव खराब कर रहे हैं । मिस्र में हाल ही भूकम्प से हजारों व्यक्ति मारे गये हैं । किन्तु मैं, इन बातों से आपको सांत्वना देना नहीं चाहता । केवल इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि पुरुषार्थ से काम लें । आत्म-विश्वास के साथ काम करें । आंखें खोलकर चलें । विपत्तियां दूर होंगी अथवा विपत्तियों का सामना करने की क्षमता प्राप्त होगी ।

आजकल जवाहर रोजगार योजना के तहत, भारत सरकार सीधे ग्राम-पंचायतों को लाखों रुपये का अनुदान भेज रही है । इस धनराशि का सबसे उत्तम उपयोग तभी होगा, जबकि उसे गांव की सिंचाई क्षमता के विस्तार पर खर्च किया जाय, गांवों को बाढ़ और सुखाड़ से बचाने के लिए किया जाय । इसका लाभ सभी वर्गों के निवासियों को मिलेगा । उपज बढ़ेगी तथा आर्थिक सम्पन्नता आयेगी । बरसात के समय जिस गांव के लोग जल का प्रबन्ध नहीं करते, प्रयोग के लिए जल का भंडार बनाकर नहीं रखते, उन्हें अक्सर अकाल का सामना करना पड़ता है । इसी प्रकार बाढ़ का सामना भी अधिकतर उन्हीं गांवों को करना पड़ता है जहां के लोग, गांव की रक्षा के लिए बनाये गये पुराने तटबंधों की रक्षा नहीं करते ।

**ग्राम पो० मुरगावां (नालंदा)**
**पिन 803 114**

# सूखे की समस्या एवं उपचार

□ डॉ० बद्री विशाल त्रिपाठी □

प्राकृतिक आपदाओं से आशय उन असामान्य प्राकृतिक घटनाओं से है जो जन जीवन और आर्थिक क्रिया-कलाप को गंभीर क्षति पहुंचाते हैं। प्राकृतिक आपदायें सूखा, बाढ़, भूकम्प, तूफान, ओलावृष्टि, महामारी आदि के रूप में उत्पन्न होती रहती हैं परन्तु उनकी पुनरावृत्ति कुछ भागों में अपेक्षाकृत अधिक होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में भी प्राकृतिक आपदाओं से पूंजी, मानव जीवन, पशु संपदा और फसलों की भारी क्षति होती है। यह दीर्घकालिक विकास प्रयासों को नकार देता है। बाढ़, सूखा और अन्य प्राकृतिक प्रकोपों के चलते विकास प्रयास बाधित हो जाता है। अभी 19 नवम्बर 1991 को चमोली उत्तर काशी क्षेत्र में आये भूकम्प से 18000 पेड़ नष्ट हो गये और सैकड़ों लोगों की जान गयी। प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव अधिकांशतः क्षेत्रगत होते हैं। परन्तु यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न कर देती है। यहां एक प्रमुख प्राकृतिक आपदा सूखे के प्रभाव और उसके रोकथाम के उपायों की व्याख्या की गयी है।

भारत में वर्षा का क्षेत्रीय, मौसमी और वार्षिक वितरण अत्यन्त असमान है। विभिन्न क्षेत्रों में वर्षा का वार्षिक वास्तविक स्तर सामान्य स्तर से पृथक होता रहता है। कभी वास्तविक वर्षा का स्तर सामान्य स्तर से अत्यन्त कम हो जाता है तो सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सूखे का आशय शुष्कता से नहीं बल्कि वर्षा की कमी से है। सूखे का मुख्य कारण वर्षा की अनिश्चितता है। भारत में कुल वर्षा का लगभग 80 प्रतिशत भाग दक्षिणी पश्चिमी मानसून से होता है। परन्तु इसकी प्रकृति अत्यन्त अनियमित है। देश के शुद्ध कृषित क्षेत्र के केवल 30 प्रतिशत भाग पर सिंचाई सुविधा उपलब्ध है, 70 प्रतिशत कृषि क्षेत्र वर्षा पर आधारित है। इस कारण सूखे की स्थिति में फसल अंशतः या पूर्णतः नष्ट हो जाती है।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के अनुसार यदि वार्षिक वर्षा का वास्तविक स्तर सामान्य स्तर के 75 प्रतिशत से कम है तो यह अति गंभीर सूखे की स्थिति कही जाती है। इसी प्रकार वास्तविक वर्षा का स्तर यदि सामान्य स्तर के 50 प्रतिशत से कम है तो इसे गंभीर सूखे की स्थिति माना जाता है। सामान्यतः यह एक प्रश्न बना रहता है और इसे जानने का प्रयास किया जाता है कि क्या सूखे की स्थिति उत्पन्न होने का कोई कालिक क्रम है। इसके प्रति अभी कोई निष्कर्षात्मक स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकी है। सामान्यतः यह पाया गया है कि 4-5 वर्षों में एक बार सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। परन्तु कभी कभी यह अवधि अत्यन्त कम और कभी अधिक हो जाती है। कभी-कभी लगातार कई वर्ष सूखे पड़ जाते हैं। देश में 1876 से अब 36 अभिलिखित सूखे पड़े हैं जिनमें कई अति सामान्य, सामान्य, गंभीर और अति गंभीर अथवा अकाल की स्थिति वाले रहे हैं। इनका विवरण तालिका में दिया गया है।

**तालिका**

**भारत में सूखे का वर्ष**

| वर्ष | सूखे से प्रभावित क्षेत्र (प्रतिशत में) | सूखे की श्रेणी | क्रम |
|---|---|---|---|
| 1876 | 15.8 | अति सामान्य | 34 |
| 1877 | 64.7 | अति गंभीर | 2 |
| 1883 | 32.8 | सामान्य | 13 |
| 1884 | 22.2 | अति सामान्य | 26 |
| 1885 | 15.2 | अति सामान्य | 35 |
| 1891 | 36.7 | सामान्य | 9 |
| 1896 | 21.7 | अति सामान्य | 27 |
| 1899 | 63.4 | अति गंभीर | 3 |
| 1901 | 28.5 | सामान्य | 20 |
| 1902 | 17.1 | अति सामान्य | 33 |
| 1904 | 31.1 | सामान्य | 19 |
| 1905 | 34.7 | सामान्य | 10 |
| 1907 | 27.2 | अति सामान्य | 22 |
| 1911 | 30.8 | सामान्य | 17 |
| 1913 | 22.3 | अति सामान्य | 25 |
| 1915 | 20.2 | अति सामान्य | 30 |
| 1918 | 68.7 | अति गंभीर | 1 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1920 | 38.8 | सामान्य | 8 |
| 1925 | 25.5 | अति सामान्य | 24 |
| 1928 | 21.4 | अति सामान्य | 28 |
| 1936 | 27.6 | अति सामान्य | 21 |
| 1941 | 32.3 | सामान्य | 15 |
| 1951 | 33.2 | सामान्य | 11 |
| 1952 | 25.8 | अति सामान्य | 15 |
| 1965 | 42.9 | सामान्य | 6 |
| 1966 | 32.3 | सामान्य | 14 |
| 1968 | 20.6 | अति सामान्य | 29 |
| 1969 | 19.9 | अति सामान्य | 31 |
| 1971 | 13.3 | अति सामान्य | 36 |
| 1972 | 44.4 | गंभीर | 5 |
| 1974 | 29.3 | सामान्य | 19 |
| 1979 | 39.4 | सामान्य | 7 |
| 1982 | 33.1 | सामान्य | 12 |
| 1985 | 30.1 | सामान्य | 18 |
| 1986 | 19.0 | अति सामान्य | 32 |
| 1987 | 49.2 | गंभीर | 4 |

Source : Amrita Rangasami : The Limits of Drought, Seminar, June 1988, No. 346

सूखे की स्थिति उत्पन्न होने के सन्दर्भ में कोई निश्चित समय अन्तराल की गणना नहीं की जा सकी है । इस सन्दर्भ में आवधिक पूर्वानुमान की भी कोई स्थिति नहीं सुनिश्चित की जा सकी है । पामेर सिरीज के आधार पर कभी कभी सूखे की स्थिति को 'सूर्य में धब्बा' सिद्धान्त से सम्बद्ध किया जाता है। योजना आयोग द्वारा 1973 में नियुक्त कार्यकारी दल ने सूखे की आवृत्ति के सन्दर्भ में कुछ अनुमान किये हैं। इसके अनुमान के अनुसार असम में 15 वर्षों में एक बार तो पश्चिमी राजस्थान में 2.5 वर्षों में एक बार सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है। परन्तु इन अनुमानों के आधार पर कोई निश्चित क्रम नहीं ज्ञात किया जा सकता है। यह अवश्य है कि इनसे देश के विभिन्न भागों में पड़ने वाले सूखों का आंकलन किया जा सकता है ।

**सूखे का प्रभाव**

योजनाकाल में भी अब तक 14 सूखे पड़ चुके हैं। इनसे अर्थव्यवस्था को भारी क्षति उठानी पड़ी है । 1966 के सूखे की अवधि में भारत भुखमरी के कगार पर आ गया था। 1965-66 में 9.00 मिलियन टन और 1966-67 में 10 मिलियन टन खाद्यान्न आयात करना पड़ा था। दोनों वर्ष कृषि उत्पादन में अत्यधिक कमी आयी थी । 1987 का सूखा भी अत्यन्त गंभीर प्रकृति का रहा है । देश के समस्त 35 वर्षा क्षेत्रों में सामान्य से कम वर्षा हुई । कुल क्षेत्रफल का 49.2 प्रतिशत भाग सूखे से प्रभावित था। अभिलिखित सूखों के सूखे गहनता क्रम में 1987 के सूखे का चौथा स्थान है । परन्तु 1985 और 1986 में भी सूखे की स्थिति होने के कारण 1987 का सूखा अभिलिखित सूखों में अति गंभीर प्रकृति का सूखा माना जाता है । इसी कारण 1987-88 में खाद्यान्न उत्पादन घटकर 130 मिलियन टन हो गया था । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1965-67 के सूखे की तुलना में 1987-88 का सूखा अत्यन्त गंभीर रहा है। परन्तु आर्थिक अव्यवस्था उन वर्षों की तुलना में 1987-88 में अत्यन्त कम हुई जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की मानसून पर निर्भरता घटी है और इसमें सक्षमता आयी है । अभी 1992 में देश के विभिन्न भागों में मानसून अत्यन्त विलम्ब से आया। यह अनुमान किया जाने लगा था कि देश के कुल 35 वर्षा क्षेत्रों में से 24 वर्षा क्षेत्रों में वर्षा का स्तर सामान्य से कम होगा जब कि 1987-88 में देश के 35 वर्षा क्षेत्रों में से केवल 21 वर्षा क्षेत्रों में ही अत्यन्त कम या अनावृष्टि की स्थिति रही है । इस प्रकार 1992 में अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर और व्यापक सूखे की संभावना थी । परन्तु मानसून की सक्रियता हो जाने के कारण उक्त संभावना टल गयी तथापि मानसून की विलंब से सक्रियता के कारण खरीफ की बुआई पर प्रतिकूल प्रभाव हुआ । इस वर्ष देश के प्रमुख खाद्यान्न उत्पादक क्षेत्रों में लगभग 7 सप्ताह बाद मानसून क्रियाशील हुआ ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का विशेष महत्व है । वे कच्चे पदार्थ, उत्पादक शक्ति और पौष्टिक पदार्थों की आपूर्ति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। परन्तु सूखे की स्थिति पशु चारे की समस्या अत्यन्त जटिल बना देती है । भारत में पशुओं की संख्या 400 मिलियन से अधिक है जो विश्व पशु संख्या का लगभग 9.5 प्रतिशत है । इनके लिए चारे के रूप में प्रतिवर्ष लगभग 832 मिलियन टन फसलों के अवशिष्ट पदार्थ और लगभग 1000 मिलियन टन हरे चारे की आवश्यकता होती है । सामान्य दशाओं में भी पशु चारे की आपूर्ति आवश्यकता से कम है । पौष्टिक पशु आहार की विशेष कमी है । चारे

का वर्तमान उत्पादन स्तर अपेक्षित स्तर का लगभग आधा ही है। इसलिए भारतीय पशु अल्पोषित ही हैं। चारागाहों के अंतर्गत क्षेत्र घटने, जोतों का आकार छोटा होने, भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने और भूमि का गैर कृषि कार्यों में बढ़ते हस्तांतरण के कारण पशु चारे की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर तो चारे की कमी हो जाने से पशु धन की भारी क्षति होती है।

सूखे के परोक्ष परिणाम भी अत्यन्त हानिकारक होते हैं। वर्षा की कमी जहां फसल उत्पादन और चारे के उत्पादन में कमी ला देती है वहीं इससे पेयजल आपूर्ति एवं ऊर्जा आपूर्ति की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। भारत में विद्युत आपूर्ति की संरचना में जल विद्युत का महत्वपूर्ण योगदान है। सूखे की स्थिति में जल विद्युत की आपूर्ति घटने से औद्योगिक क्रियाओं के सम्यक् क्रियान्वयन में बाधा उत्पन्न होती है घरेलू विद्युत उपभोग बाधित होने लगता है। सूखे की स्थिति विभिन्न बीमारियों को बढ़ावा देती है। सूखे की स्थिति उत्पन्न होते ही वस्तुओं की आपूर्ति बनी रहने पर भी वस्तुओं की कीमतें बढ़ने लगती हैं। व्यवसायी और उपभोक्ता वस्तुओं का संग्रह करने लगते हैं जिससे बाजार में वस्तुओं की कमी उत्पन्न होने लगती है। यह संग्रहकारी और लाभ अर्जक मनोवृत्ति सामान्य उपभोक्ताओं का जीवन यापन अत्यन्त कष्टदायक बना देती है।

सूखे के प्रभाव की भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुभव से यह जानकारी होती है कि अतीत के सूखों के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को गंभीर क्षति उठानी पड़ी है। ब्रिटिश शासन काल में कई सूखे इस स्तर तक गंभीर रहे कि उन्होंने अकाल का रूप धारण कर लिया और जन धन की भारी क्षति की थी। उड़ीसा में 1865 में पड़े अकाल में कई लाख लोग काल-कवलित हो गये। इसी प्रकार 1943 के बंगाल के अकाल में लाखों लोग भूख से मरे। ब्रिटिश शासन काल में सूखाजन्य अकाल की बारंबारता एक सामान्य बात थी। स्वतंत्र भारत में सूखे की गंभीरता यद्यपि कम हुई है, भूख से मरने वालों की संख्या समाप्त हो गयी है या अत्यन्त कम हो गयी है तथापि इससे अब भी भारी क्षति होती है मुख्य क्षति फसल उत्पादन और चारे के उत्पादन में कमी के रूप में उत्पन्न होती है। 1965-66 और 1966-67 में सूखे के कारण फसल उत्पादन में भारी कमी आ गयी। लगभग 60 प्रतिशत फसलें नष्ट हो गईं। बहुत बड़े क्षेत्र में अनाज और जल की कमी पड़ गयी। देश का लगभग 43 प्रतिशत क्षेत्र सूखे से प्रभावित था। खाद्यान्न आवश्यकता पूरी करने के लिए लगभग 10 मिलियन टन खाद्यान्न प्रतिवर्ष मंगाना पड़ा तथापि लोगों को भूख से होने वाली मृत्यु से बचा लिया गया।

**उपचारात्मक उपाय**

सूखाजनित दुष्परिणामों की रोकथाम के लिए सम्यक् उपायों की आवश्यकता है। यद्यपि सूखे की अधिक संभावना वाले क्षेत्रों में सूखाग्रस्त क्षेत्रीय कार्यक्रम और मरुस्थल क्षेत्रों को विकसित करने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। इनका मुख्य उद्देश्य सूखाग्रस्त क्षेत्रों की कृषि को विकसित करना और वहां की आर्थिक गतिविधि को विविधीकृत करना है। देश के 90 जिलों में सूखाग्रस्त क्षेत्र विकास कार्यक्रम और इसी प्रकार गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और राजस्थान के कुछ जिलों में मरुस्थल विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है। परन्तु अब तक के प्रयास और कार्यक्रम समस्या के अल्पांश को ही स्पर्श कर सके हैं। आगामी वर्षों में खाद्यान्न मांग में अत्यंत तीव्र वृद्धि की संभावना है। यह अनुमान है कि सन् 2000 तक देश में 250 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन की आवश्यकता होगी। इसलिए फसलों के उत्पादन में उतार-चढ़ाव को न्यूनतम करने के लिए सम्यक् प्रयासों की आवश्यकता है।

सर्वप्रमुख आवश्यकता सूखे के पूर्वानुमान करने की है। इसके लिए मौसम पूर्वानुमान विभाग को अधिक सुविधायुक्त और वैज्ञानिक अनुसंधान की नवीनतम विधियों से युक्त करना होगा। मौसम पूर्वानुमान विभाग द्वारा सूखे के पूर्वानुमान के संदर्भ में किये गये अब तक के प्रयास यह स्पष्ट करते हैं कि इसकी बारंबारता का कोई क्रम नहीं है। सूखे की प्रवृत्ति, आवधिक वितरण, क्षेत्रीय प्रसार के संदर्भ में वार्षिक वर्षा की दीर्घकालीन श्रेणियों का परीक्षण किया गया है। परन्तु इससे किसी क्रम की जानकारी नहीं मिल सकी है। सामान्यतः यह देखा गया है कि प्रत्येक 4-5 वर्ष में एक बार मानसून प्रतिकूल हो जाता है और जन-धन की क्षति होती है। परन्तु यह सुनिश्चित है कि अब मौसम पूर्वानुमान विभाग के अल्पकालिक अनुमान वर्षा के समुचित पूर्वानुमान प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। इस आधार पर सम्यक् क्रियाविधि बनायी जा सकती है। इस आंकलन के आधार पर वर्षा दशाओं को ध्यान में रखकर उचित फसलें बोई जा सकती हैं।

सूखे की भयावहता घटाने का दूसरा सर्वप्रमुख माध्यम कम परिपक्वता अवधि वाले बीजों का प्रसार करना है। कम

परिपक्वता अवधि वाले बीजों से कम वर्षा दिनों वाले मौसम में भी सामान्य स्तर तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। धान और गेहूँ भारत की अति प्रमुख खाद्यान्न फसल हैं। इन फसलों में कम परिपक्वता अवधि वाले बीजों की आवश्यकता है। इन बीजों का सम्यक् भंडारण रहने पर मानसून के विलम्ब से आने पर और शीतकालीन वर्षा न होने पर भी पर्याप्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि मानसून विलम्ब से क्रियाशील होता है। इससे खरीफ की फसल की बुवाई और रोपाई में विलम्ब होने से रबी की फसल की बुवाई पर भी प्रतिकूल प्रभाव होता है। इस दिशा में कुछ प्रगति अवश्य हुई है। इनमें से कुछ बीजों की उपलब्धता सुलभ है। परन्तु निम्न उत्पादन सामर्थ्य के कारण इसका चलन अत्यन्त कम हुआ है। अतः आवश्यकता है कि पर्याप्त उत्पादन सामर्थ्य युक्त अल्प परिपक्वता अवधि वाले बीजों का प्रसार किया जाए। इसी प्रकार चारे वाली फसलों में सुधार की आवश्यकता है। चारे वाली फसलों में ऐसे बीजों की प्रसार की आवश्यकता है जिनसे अपेक्षाकृत कम वर्षा की स्थिति में चारे का उत्पादन किया जा सके।

सूखे की भयावहता कम करने में फसलों की विविधता सहायक होती है। इसलिए फसल संरचना की विविधता बनाये रखना आवश्यक है। भारतीय फसल संरचना में अच्छे अनाजों के साथ-साथ मोटे अनाजों की एक सबल श्रृंखला विद्यमान थी। कई मोटे अनाज अत्यन्त कम समय में पककर तैयार हो जाते थे। यह अत्यन्त खटकने वाली बात है कि विकसित कृषि क्षेत्रों और हरित क्रान्ति की सफलता वाले क्षेत्रों की फसल संरचना से मोटे अनाजों की प्रजाति ही समाप्त होती जा रही है। इन अनाजों की फसलों को बचाये रखा जाना आवश्यक है। सूखे के वर्षों में मोटे अनाजों के अंतर्गत क्षेत्र बढ़ाकर अर्थव्यवस्था को खाद्य संकट से बचाया जा सकता है। मोटे अनाज कम समय, कम पानी और कम उर्वरक की अपेक्षा करते हैं। उन पर बीमारियों का भी प्रकोप कम होता है। प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्ध मोटे अनाजों के उत्पादन एवं उनके बीज संवर्धन को बढ़ाया जाना चाहिए।

वर्तमान युग में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को विकास का प्रमुख अभिकर्ता माना जाता है। विभिन्न समस्याओं का समाधान प्रौद्योगिकी में निहित माना जा रहा है। अब प्रौद्योगिकी को भी कृषि का एक प्रमुख साधन माना जा रहा है। इसलिए कृषिगत प्रौद्योगिकी के विकास और प्रसार पर जोर दिया जा रहा है। प्रौद्योगिकी उन्नयन सूखे की दशाओं में भी कृषि उत्पादन का सामान्य स्तर बनाये रख सकता है। इसरायल ने रेगिस्तानी क्षेत्र में भी उन्नत प्रौद्योगिकी द्वारा फसल उत्पादन संभव कर लिया है। इस प्रकार की प्रौद्योगिकी प्रयोग के लिए अन्यत्र भी उपलब्ध है। भारत का रेगिस्तानी क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह भूमि प्राचीन काल से खाली पड़ी है। उन्नत प्रौद्योगिकी द्वारा इसमें भी उपज प्राप्त की जा सकती है और सूखे की दशाओं में अन्य क्षेत्रों में कृषि उत्पादन के उच्चावचन को रोका जा सकता है। यह अनुमान किया जा रहा है कि जैव प्रौद्योगिकी के कृषि में प्रयोग से सूखाग्रस्त क्षेत्र में भी फसल उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा।

वनों के अंतर्गत क्षेत्र वृद्धि सूखे की स्थिति से बचने का एक सुरक्षात्मक उपाय है। वनों के अंतर्गत क्षेत्र बढ़ने से एक ओर जलवायु प्राकृतिक रूप से नियंत्रित होती है और दूसरे वे सूखे की दशाओं में आजीविका हेतु साधन उपलब्ध कराने में समर्थ है। सूखे की अधिक संभावना वाले क्षेत्रों में वृक्षारोपण क्षेत्र को सूखे से बचाता और मरुस्थलीय क्षेत्रों को बढ़ने से रोकता है। इसी उद्देश्य से सूखाग्रस्त क्षेत्रों के विकास कार्यक्रम के एक आवश्यक अंग के रूप में वृक्षारोपण को प्रोत्साहित किया जा रहा है। भारत में वनों के अंतर्गत क्षेत्र अपेक्षित मान से कम हैं। वस्तुतः आज की आवश्यकता है कि वनों के अंतर्गत उपलब्ध अप्रयुक्त भूमि पर जलवायु और पारिस्थितिकी के अनुसार लाभदायक फसलें और फलोत्पादक पौधे उगाकर जमीन का सदुपयोग किया जाये इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि कृषि भूमियों पर नियमित फसलों के साथ चारा, ईंधन, जैविक खाद एवं फल प्रदान करने वाले वृक्षों को लगाकर खेत की मेड़ वाली जमीन का भी उपयोग किया जाय। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि फसल उत्पादन के साथ वृक्षारोपण को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

**78/3 बांध रोड, एलनगंज**
**इलाहाबाद-211 002**

# ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के उपाय

□ नवीन पन्त □

नदी के किनारे मोहन के कुछ खेत थे। जमीन बहुत उपजाऊ थी। मोहन और उसकी पत्नी खेतों पर कड़ी मेहनत करते थे। उनकी जमीन सोना उगलती थी। मोहन के पास अपने बैल, दूध देने वाले पशु, गाय भैंस थे। मोहन को किसी अन्य किस्म की खराब आदत नहीं थी। उसके केवल दो बच्चे थे। एक लड़का और एक लड़की। दोनों पढ़ने जाते थे और पढ़ने-लिखने में तेज थे। मोहन का लड़का फौज में अफसर बनना चाहता था और लड़की डॉक्टरी पढ़ना चाहती थी। मोहन को किसी वस्तु की कमी नहीं थी।

फिर अचानक एक दिन सभी कुछ समाप्त हो गया। नदी में भयंकर बाढ़ आई। मोहन के खेत और गांव का कुछ हिस्सा बाढ़ की चपेट में आ गया। मोहन का मकान ऊंचे पर था और पक्का था। इसलिए उसके मकान पर तो बाढ़ का कोई असर नहीं पड़ा लेकिन गांव के अनेक मकान बाढ़ में नष्ट हो गए। आठ-दस दिन तक बाढ़ अपना प्रकोप दिखाती रही। जब पानी उतरा तो पता चला कि बाढ़ ने मोहन के खेत को बालू से भर दिया है। मोहन का सर्वस्व लुट गया।

★ ★ ★

राम सिंह पिथौरागढ़ जिले के पर्वतीय क्षेत्र के एक गांव में रहता था। गांव की बगल में पर्वतीय नदी बहती थी। उसका साफ-शुद्ध और शीतल पानी गर्मियों में राह चलते यात्रियों की प्यास बुझाता था। राम सिंह ने नदी से एक छोटी नहर निकाल कर घट पन चक्की बना ली थी। गांव के लोग राम सिंह की चक्की पर गेहूं, मडुवा, मक्का आदि पिसाने लाते थे। राम सिंह सभी का स्नेह से स्वागत करता और उनका लाया अनाज पीसता था। अनाज पीसने के एवज में उसे कुछ पिसाई और पिसे हुए अनाज का पचासवां हिस्सा मिलता था।

राम सिंह ने नीचे की पहाड़ी को समतल करके वहां कुछ खेत बना लिए थे। वह उन खेतों में गेहूं, धान, दालें और मौसमी सब्जी उगाता था। उसके खेतों में उसकी आवश्यकता का अनाज पैदा हो जाता था। घट से उसे कुछ अतिरिक्त अनाज मिल जाता था और नियमित आय हो जाती थी। मौसमी सब्जी बेचने से उसे अतिरिक्त पैसे मिल जाते थे। राम सिंह सुखी और सम्पन्न था।

अचानक एक दिन मूसलाधार वर्षा शुरू हुई। तीन दिन तक वर्षा होती रही। पहाड़ी नदी ने रौद्र रूप धारण कर लिया। तीसरे दिन रात के समय भयंकर आवाज हुई। ऐसा लगा कि मानो समूचा पहाड़ गिर कर नीचे आ रहा है। सवेरा होने पर राम सिंह ने देखा कि उसकी पनचक्की और अधिकांश खेत पानी में डूबे हुए थे। दो दिन बाद जब नदी शान्त हुई तो वहां न चक्की थी और न राम सिंह के खेत। पनचक्की को नदी न केवल अपने साथ बहा ले गई थी बल्कि राम सिंह के सभी खेतों को उसने विशाल पत्थरों, कंकरों और बजरी से भर दिया था। राम सिंह की दुनिया उजड़ गई। प्रकृति के कोप ने उसकी वर्षों की मेहनत एक रात में साफ कर दी।

★ ★ ★

ओड़ीसा में पुरी के समीप मछुवारों का एक गांव है। गांव के पुरुष वर्ष में नौ-दस महीने मछली पकड़ने के लिए समुद्र में दूर-दूर तक जाते हैं। कभी-कभी उन्हें चक्रवात अथवा भयंकर समुद्री तूफान का भी सामना करना पड़ता था।

इस गांव में नीलकंठ नाम का एक युवक रहता था। लम्बा चौड़ा गबरू जवान। नाव चलाने और पाल बांधने में प्रवीण वह समुद्र में अपनी नौका वहीं ले जाता, जहां सबसे ज्यादा मछलियां होतीं। वह हवा और बादलों का रुख देखकर मौसम का पता लगा लेता। गांव के सभी मछुआरे नीलकंठ के नेतृत्व में समुद्र में जाते। हमेशा नीलकंठ तूफान आने के पूर्व अपने साथियों को तट पर ले आता था।

नीलकंठ की सुन्दर पत्नी और लाड़ला बच्चा था, भविष्य के सपने थे। लेकिन एक दिन नीलकंठ और उसके दल की पांचों नावें चक्रवात में फंस गई और महासागर में समा गई। नीलकंठ और अन्य मछुवारों की पत्नियां आज भी अपने-अपने पतियों की लौटने की प्रतीक्षा में हैं। दिन महीनों में और महीने वर्षों में बदल गए हैं। लेकिन उनकी प्रतीक्षा जारी है।

★ ★ ★

उत्तर काशी जिले का सबसे बड़ा गांव नरस्यूं। लोग सम्पन्न, खुशहाल और मस्त। मेहनती और ईमानदार। जो मिलता उसमें

संतोष करते और अधिक की इच्छा नहीं करते ।

एक रात बिना किसी पूर्व चेतावनी के मकान हिलने लगे । दीवारें गिरने लगी । छतें धंसने लगी । अनेक मनुष्य और पशु मलवे में दब गए । उन्हें भागने और बचने का भी अवसर नहीं मिला । कुछ लोगों की तत्काल मृत्यु हो गई और कुछ ने बाद में दम तोड़ दिया ।

एक ही रात में इस क्षेत्र का नक्शा बदल गया । स्कूल, डाकघर, औषधालय, सड़कें और पुल सभी नष्ट हो गए । भूकम्प ने एक सुन्दर, मनोरम गांव का नक्शा बदल दिया । कई दशकों की मेहनत मिनटों में नष्ट हो गई ।

ऊपर की चारों कथाएं काल्पनिक हैं ! लेकिन जिन परिस्थितियों का वह वर्णन करती है वह काल्पनिक नहीं हैं । देश के अनेक इलाकों की जनता को कभी-कभी इस तरह की विपदाओं का सामना करना पड़ता है । प्राकृतिक विपदाएं हमारे जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती हैं, वे अनेक रूपों में सामने आती हैं । इनमें से प्रमुख हैं—सूखा, बाढ़, तूफान और भूकम्प ।

हम एक विशाल देश के वासी हैं । इसके आकार-प्रकार और जलवायु की विविधता के कारण इसे उपमहाद्वीप कहा जाता है । अपने विशाल स्वरूप के कारण हर वर्ष, हर मौसम में किसी न किसी तरह की प्राकृतिक विपदा का सामना करना पड़ता है । इसके अलावा, औद्योगिक विस्तार के कारण इसे औद्योगिक खतरों का भी सामना करना पड़ता है । कभी-कभी सामाजिक व जातीय तनावों के कारण भी मनुष्य निर्मित संकट आ जाते हैं । इस सबमें जन-धन की अपार हानि होती है ।

विपदा के समय सभी उस पर चिन्ता प्रकट करते हैं । लोगों की सहायता और पुनर्वास के लिए काफी धनराशि भी खर्च की जाती है । लेकिन कुछ समय बाद लोग सभी कुछ भूल जाते हैं । और, जब कोई विपदा फिर आती है उसका सामना करने के लिए कोई तैयारी नहीं होती । पुराने अनुभवों से लाभ उठाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता ।

प्राकृतिक विपदाओं को पूरी तरह रोका नहीं जा सकता लेकिन उनसे होने वाले नुकसान को योजना बना कर काफी कम किया जा सकता है ।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1990 में एक प्रस्ताव पास करके 90 के दशक को प्राकृतिक विपदाओं में कमी करने का दशक घोषित किया था । संयुक्त राष्ट्र के इस प्रस्ताव के परिपालन में प्रति वर्ष अक्तूबर के दूसरे बुधवार को अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृतिक विपदाओं को कम करने के दिवस के रूप में मनाया जाता है । इसी के साथ प्राकृतिक विपदाओं से होने वाली बरबादी को कम करने के अन्तरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाया जाता है ।

यह अपेक्षा की जाती है कि सभी देश प्राकृतिक विपदाओं का अनुमान लगाएंगे और उनसे होने वाले नुकसान को कम से कम करने की योजनाएं बनाएंगे ! पिछले कुछ वर्षों के दौरान प्राकृतिक विपदाओं की संख्या में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई है । 1900 से 1960 के दौरान 60 वर्षों में प्राकृतिक विपदाओं की 4000 घटनाएं हुईं, जबकि 1960 से 1989 के दौरान 29 वर्षों में 3,400 घटनाएं हुईं । 60 के दशक में प्राकृतिक विपदाओं से विश्व भर में 22,570 लोगों की मृत्यु हुई । 70 के दशक में मरने वालों की संख्या बढ़कर 1,42,820 हो गई थी ।

विश्व में होने वाली प्राकृतिक विपदाओं में दक्षिण पूर्व एशिया का स्थान चौथा है । भारत के सभी 32 राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को किसी न किसी प्राकृतिक विपदाओं का सामना करना पड़ता है । इनमें से 24 राज्य और प्रदेश ऐसे हैं जो प्रतिवर्ष किसी न किसी विपदा की चपेट में रहते हैं । देश का 85 प्रतिशत क्षेत्र ऐसा है जो प्राकृतिक विपदा की चपेट में आ सकता है । इसके 68 प्रतिशत क्षेत्र में सूखे की आशंका रहती है । देश की 4 करोड़ हेक्टेयर भूमि हर वर्ष बाढ़ की चपेट में आ जाती है । हमारा समुद्र तट 5,700 किलोमीटर लम्बा है । इसका कोई न कोई भाग हर वर्ष तूफान की चपेट में आ जाता है । देश का आधे से भी अधिक भाग ऐसा है, जहां भूकम्प आ सकता है । देश के कुछ भागों में आए दिन चट्टानें खिसकती और भूमि धंसती रहती है । देश का 2000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र ऐसा है जहां हिम खंड गिर सकते हैं ।

देश के कुल 443 जिलों में से 93 सूखे की आशंका वाले और 21 मरुस्थल की चपेट वाले हैं । राजस्थान और गुजरात में 73 विकास खंड ऐसे हैं जहां प्रति वर्ष सूखे के कारण लोगों को कष्ट उठाना पड़ता है ।

पश्चिम बंगाल देश का ऐसा राज्य है जिसे सूखा, बाढ़, तूफान और भूकम्प चारों तरह की विपत्तियों का सामना करना पड़ता है । चार राज्य आंध्र प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और पंजाब ऐसे हैं जिन्हें तीन तरह की आपदाओं का सामना करना पड़ता है ।

प्राकृतिक विपदाओं से निपटने की मुख्य जिम्मेदारी संबंधित राज्यों की होती है । इस काम में केन्द्र सरकार शक्ति भर

सहायता पहुंचाती है । पहली अप्रैल 90 से प्रत्येक राज्य के लिए प्राकृतिक आपदाओं के दौरान सहायता के लिए एक कोष बनाया गया है । इस कोष के लिए 75 प्रतिशत राशि सरकार ने और 25 प्रतिशत राज्य सरकार ने दी है ।

प्राकृतिक विपदाओं के परिणामस्वरूप जन-धन की व्यापक हानि होने के अलावा उस क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियों को लम्बे समय के लिए आघात पहुंचता है । इससे वर्षों तक उस क्षेत्र के जीवन और गुणवत्ता पर प्रतिकूल असर पड़ता है । विश्व बैंक के अनुसार प्राकृतिक विपदाओं से प्रति वर्ष 40 अरब (अमरीकी) डालर का नुकसान होता है । यह नुकसान विकासशील देशों को अधिक होता है । एक अनुमान के अनुसार सकल राष्ट्रीय उत्पाद में विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों को 20 गुना अधिक नुकसान होता है ।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान देश में प्राकृतिक विपदाओं का प्रभाव कम करने के लिए अनेक उपाय किए गए हैं । जैसे कि मरुस्थल विकास कार्यक्रम सूखा की आशंका वाले क्षेत्रों का कार्यक्रम और जल विभाजक क्षेत्र विकास कार्यक्रम नदियों के जल ग्रहण और बाढ़ की आशंका वाले क्षेत्रों में संरक्षण योजनाओं का उद्देश्य भी प्राकृतिक विपदाओं की उग्रता को कम करना है ।

प्राकृतिक विपदाओं को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता । लेकिन प्राकृतिक विपदाओं की चेतावनी देने की व्यवस्था करके और उनका सामना करने की तैयारी करके उनसे होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है ।

फिर, प्राकृतिक आपदा वाले क्षेत्रों के लोगों को इन विपत्तियों का सामना करने का प्रशिक्षण देकर जन-धन की हानि को काफी कम किया जा सकता है ।

हमारे ग्रामीण क्षेत्रों को आम तौर पर सूखा और बाढ़ का सामना करना पड़ता है । सूखे के दौरान पीने के पानी की कमी से मनुष्य और जानवरों को असहय कष्ट उठाने पड़ते हैं । देश के कुछ भागों में लोगों को पानी और चारे की तलाश में अपना घर छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ता है । अब अगर ग्राम स्तर पर स्थानीय प्रशासन की सहायता से इस स्थिति से निपटने की योजना बना ली जाए तो लोगों के कष्ट काफी कम किए जा सकते हैं ।

इसी तरह बाढ़ की समस्या है । बाढ़ नियंत्रण के लिए पिछले वर्षों के दौरान बहुत कुछ किया गया है फिर भी प्रति वर्ष बाढ़ के कारण सैकड़ों व्यक्तियों की मृत्यु होती है और धन की सम्पत्ति की व्यापक हानि होती है । आम तौर पर होता यह है कि बाढ़ आने पर पीड़ितों की सहायता और पुनर्वास के लिए बहुत कुछ किया जाता है लेकिन उसके बाद सभी कुछ भुला दिया जाता है ।

वास्तव में प्राकृतिक विपदाओं से तब तक प्रभावी रूप से नहीं निपटा जा सकता, जब तक सूखा और बाढ़ दोनों के दौरान बड़े पैमाने पर लोगों को आश्रय देने, पीने का पीना देने, उनके जानवरों के लिए पानी और चारे की व्यवस्था करने की समस्या उत्पन्न होती है । फिर संकट के समय अनेक लोग छोटी-बड़ी बीमारियों के शिकार हो जाते हैं । ऐसे लोगों का समय पर उपचार और चिकित्सा की भी व्यवस्था करनी होती है । अगर विपदाओं से निपटने की योजना पहले से बना ली जाए तो यह सब काम अच्छी तरह से किए जा सकते हैं ।

सूखे के संकेत पहले से मिलने लगते हैं । बाढ़ के बारे में कभी पूर्व चेतावनी सिंचाई और मौसम विज्ञान से मिल जाती है । कभी नहीं मिलती । लेकिन बाढ़ की आशंका के संकेत मिलने लगते हैं । ग्रामीण भाइयों को चाहिए कि इस तरह के संकेत मिलते ही संकट का सामना करने की तैयारी कर लें ।

राहत कार्यों में समाज के सभी धर्मों और वर्गों के लोगों को शामिल करें । सभी का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न करें । किसी को भी यह शिकायत का मौका न दें कि उसकी उपेक्षा की गई । सूखा और बाढ़ की समस्या के स्थायी समाधान के लिए स्थानीय जनता को संगठित करें, अपने क्षेत्र के सरकारी अफसरों, विधायकों और संसद सदस्यों का सहयोग प्राप्त करें ।

तूफान और भूकम्प की आशंका वाले क्षेत्रों के निवासी भी विपत्ति का सामना करने की आपात योजनाएं तैयार कर के रखें । भूकम्प चेतावनी देकर और बिना चेतावनी दिए हुए, दोनों तरह से आता है । कभी-कभी भूकम्प के बड़े झटके आने से पूर्व साधारण झटके आते हैं । ऐसे झटके आते ही सभी को सुरक्षित स्थान पर चले जाने की सलाह दें । भूकम्प आने पर सभी को भोजन-पानी और दवा-दारू मिले इसकी व्यवस्था करें । यह सच है कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी की प्रगति के बावजूद हम प्राकृतिक विपदाओं को अभी रोक सकने में समर्थ नहीं हैं किन्तु हम उनसे होने वाली जन-धन की हानि को काफी कम कर सकते हैं । यह कार्य जनता को प्रशिक्षित करके और उसमें चेतना फैलाकर ही किया जा सकता है ।

**22 मैत्री अपार्टमेन्ट्स**
**ए-13 पश्चिम विहार, नई दिल्ली**

# प्राकृतिक आपदाएं कारण और निवारण

□ शैलेन्द्र □

पुरानी कहावत है कि विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। वैसे भी अगले पल क्या होगा, कहना मुश्किल है। प्रकृति का प्रकोप कब किस को अपनी चपेट में ले ले, कहा नहीं जा सकता। कब भूकम्प आ जाये ? कब बांध टूट जाये और उफनती नदी गांव के गांव लील जाये ? कब इतना अधिक सूखा पड़ जाये कि लोग अनाज के दाने के दर्शन को तरस जायें ? इस तरह के अनेकानेक संकटों को आम तौर पर हम भारतीय "अनहोनी" कहकर टाल देते हैं और विपत्ति को भगवान की मर्जी समझकर चुपचाप सह लेते हैं।

मगर भारत सरकार ने ऐसी संकटकालीन परिस्थितियों से निपटने की कला सीख ली है। प्राकृतिक आपदाओं से–चाहे वे किसी भी किस्म की हों–निपटने के लिए कई अल्पावधि व दीर्घावधि योजनाएं व कार्यक्रम हैं भारत सरकार की झोली में।

इतनी बात निश्चित है कि प्राकृतिक आपदाओं को पूरी तरह रोकना दुनिया में बड़ी से बड़ी ताकत के लिए संभव नहीं है लेकिन जन समुदाय और प्रशासन की तैयारियां पूरी हों और समुचित एहतियाती कदम उठाये जायें तो निश्चित रूप से उनके कुप्रभाव को काफी कम किया जा सकता है। यदि सही वक्त पर सही कदम उठाया जाये तो अकस्मात् हुई घटनाओं से जान माल की होने वाली क्षति को काफी कम किया जा सकता है।

इन बातों को उजागर करने की खातिर ही संयुक्त राष्ट्र महासभा में दिसम्बर 1989 में एक प्रस्ताव पारित कर 1990 को प्राकृतिक आपदाओं को कम करने की रणनीति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दशक के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया था जिसके अनुसार हर साल अक्तूबर माह के दूसरे बुधवार को प्राकृतिक आपदाओं को कम करने के अन्तर्राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया था। इसका उद्देश्य प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग पर बल देना तथा लक्ष्य प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय कार्य योजना को प्रोत्साहित करना है। इस दशक का मुख्य लक्ष्य राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति का सही आंकलन करना, राष्ट्रीय, प्रादेशिक व स्थानीय स्तर पर एहतियाती तैयारी करना व रोकथाम के कदम तैयार करना, अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय व स्थानीय स्तर पर पूर्व चेतावनी देने की प्रणाली विकसित करना तथा बेहतर संचार सुविधा प्रदान करना आदि है। साथ ही इसका एक मुख्य उद्देश्य जिम्मेदार अधिकारियों को ऐसी आपातकालीन स्थितियों से निबटने के लिए तैयार करना है ताकि उनके सोच विचार व रुख तथा काम करने के ढंग में परिवर्तन हो।

भारत सरकार ने प्राकृतिक आपदाओं के किस्मों तथा क्षेत्रों की पहचान कर ली है। इन आपदाओं की पुनरावृत्तियों ने यह बता दिया है कि कितने अंतराल के बाद किन क्षेत्रों में सूखा पड़ता है और किन क्षेत्रों में बाढ़ आती है तथा किन-किन क्षेत्रों में हर साल ऐसा होता है। कौन-कौन सी आबादी अत्याधिक प्रभावित होती है तथा भूकम्प की संभावना किन क्षेत्रों में अधिक है ? मानव संसाधनों व प्रशासनिक उपायों से स्थिति में सुधार के अनेकानेक कदम पिछले 20-25 वर्षों में उठाये गये हैं। क्षेत्र के अनुसार अनाज की विशेष किस्म भी विकसित की गई है। बांध बनवाने व सिंचाई व्यवस्था पहुंचाने के सैकड़ों कार्यक्रमों पर अमल किया गया है।

दुनिया भर में सन् 1900 से 1960 तक के छह दशकों में लगभग चार हजार प्राकृतिक आपदायें आयीं जबकि उससे कम समय में 1960 से 1989 की अवधि में यानी विगत तीन दशकों में ऐसी घटनाओं की संख्या 3400 थी। विश्व के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो प्राकृतिक आपदाओं के मामले में दक्षिण पूर्व एशिया का स्थान चौथा है। वातावरण में परिवर्तन का कुप्रभाव पर्यावरण पर पड़ा है, हरियाली गायब सी होती जा रही है, इस प्रकार के कई मानवीय कारणों से भी इन घटनाओं में बढ़ोतरी होना स्वाभाविक है।

विडम्बना है कि केवल ऐसी घटनाओं की संख्या में ही वृद्धि नहीं हो रही है बल्कि इनमें होने वाली जान माल की क्षति में भी बढ़ोतरी हो रही है। 1960 के दशक में विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं में 22570 व्यक्ति मारे गये थे जबकि 1970 के दशक में यह संख्या लगभग डेढ़ लाख तक पहुंच गयी। इन आपदाओं से जान माल की क्षति तो होती है साथ में जानवर भी काफी मरते हैं, संचार व पेयजल व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त हो जाती है। कई बार तो पीड़ित व प्रभावित लोगों तक भोजन, जल व दवा तक पहुंचाना मुश्किल हो जाता है। प्राकृतिक आपदाओं का पर्यावरण के साथ अन्योन्याश्रित संबंध होता है इसलिए पूरे माहौल पर इसका असर पड़ता है।

संकटकालीन व्यवस्था प्रबंध को अब विकास के कार्यक्रमों

के साथ जोड़ने की आदत हमें पड़ने लगी है। पहले सरकार इसे अलग समस्या के रूप में देखती थी। राहत व पुनर्वास के कार्यों को राजनीतिक इच्छा शक्ति और धन के समर्थन की जरूरत होती है। अल्पावधि योजनाएं बनाकर इनसे निबटा जा सकता है मगर विकास की योजनाओं में इन अनहोनी घटनाओं को मद्देनजर रखने से ही दीर्घकालीन योजनाएं बनती हैं और एहतियाती कदम उठाये जाते हैं। प्राकृतिक आपदाओं से निबटने की पद्धति को समन्वित विकास प्रणाली का अब अविभाज्य अंग माना जाने लगा है। दरअसल अब यह प्रक्रिया तीन चरणों में पूरी होती है। घटना से पूर्व के कदम, घटना के दौरान उठाये जाने वाले कदम और उसके बाद उठाये जाने वाले कदम।

भारत सरकार ने केन्द्रीय कृषि मंत्री की अध्यक्षता में इस कार्य हेतु राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् का गठन किया है। इसका एक प्रमुख कार्य है पंचवर्षीय योजनाओं में क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों में प्राकृतिक आपदाओं को कम करने के लिए उठाये जाने वाले कदमों पर विशेष जोर देना। योजना आयोग ने भी सभी राज्य सरकारों से यह कह रखा है कि वे अपने विकास कार्यक्रमों में इसे भी शामिल करें। कई कार्यक्रमों में प्राकृतिक आपदाओं की पुनरावृत्ति रोकने की दिशा में उठाये जाने वाले कदम शामिल है। उदाहरण के तौर पर रेगिस्तान विकास कार्यक्रम, सूखा क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सिंचाई जल प्रबंध विकास कार्यक्रम, भूमि संरक्षण कार्यक्रम, नदी घाटी परियोजनाएं, बाढ़ में कहर ढाने वाली_ नदियों की धाराओं पर नियंत्रण के कार्यक्रम आदि।

इन कदमों का महत्व केवल इस बात से आंका जा सकता है कि हमारे विशाल देश भारत का लगभग 85 प्रतिशत भूभाग या तो सूखे की या बाढ़ की या तूफान या भूकंप की संभावना से ग्रसित है। इसके अलावा काठी या दोआब क्षेत्रों के विकास के भी अलग से कार्यक्रम बनाये गये हैं। 5700 किलोमीटर के समुद्र तट हैं जिनमें कहीं न कहीं तूफान की आशंका बनी ही रहती है। भू-स्खलन की समस्या भी है।

वैसे इन आपदाओं से निबटने का काम मूल रूप से राज्य सरकार के जिम्मे है लेकिन इसके लिए केन्द्र सरकार से उन्हें हर संभव सहायता प्रदान की जाती है। कई केन्द्र प्रायोजित योजनाएं भी हैं। हर राज्य के लिए राहत कोष का गठन किया जा चुका है। इसमें 75 प्रतिशत योगदान केन्द्र का होता है।

प्राकृतिक आपदाओं के दौरान स्वास्थ्य विभाग की भी प्रमुख भूमिका होती है। समय पर समुचित स्वास्थ्य सेवा मुहैया करने के लिए केन्द्रीय स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय में आपातकाल चिकित्सा सहायता विभाग है। संकट की घड़ी को संभालने की तकनीकी क्षमता भी इन्हें हासिल है। इसके अतिरिक्त विश्व स्वास्थ्य संगठन के साथ तालमेल बिठाकर भी देश में कुछ ऐसे केन्द्र विकसित किये जा रहे हैं जो आड़े वक्त काम आ सकें। इनमें ऐसी नाजुक घड़ी में काम करने का विशेष प्रशिक्षण भी लोगों को प्रदान किया जाएगा। साथ ही इन कार्यों में सक्रिय सहयोग प्रदान करने के लिए गैर सरकारी संगठनों को प्रोत्साहित करने की भी कई योजनाओं पर अमल हो रहा है।

भौगोलिक कारणों व जलवायु तथा मौसमों के कारण भी हमें इन विभीषिकाओं को झेलना पड़ता है। फिर औद्योगिक विस्तार ने भी बड़ी समस्याएं उत्पन्न की हैं। पर्यावरण परिवर्तन से लेकर भोपाल गैस त्रासदी तक के हम सब भुक्तभोगी हैं।

देश के 24 राज्य व केन्द्र प्रशासित क्षेत्र प्राकृतिक आपदाओं की आशंका वाले हैं। हमारे 443 जिलों में से 90 सूखा प्रभावित कार्यक्रमों के अन्तर्गत आते हैं। रेगिस्तान विकास कार्यक्रम 29 जिलों में चल रहे हैं। 137 जिलों में बाढ़ से बचने के उपाय किये जा रहे हैं तो 13 जिलों को तूफान की चपेट से बचाने का काम चल रहा है।

खास तौर से केन्द्र सरकार के कुछ मंत्रालय प्राकृतिक आपदाओं से निबटने की रणनीति बनाने और उस पर अमल करने के काम में लगे हैं। देश भर के विशेषज्ञों के साथ इस मसले पर गहन विचार विमर्श के बाद प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर त्वरित कार्रवाई हेतु विस्तृत दिशा निर्देश जारी किये जा चुके हैं।

भारत में संकट की घड़ी में की जाने वाली व्यवस्थाओं का जो प्रबंध है, उसकी आमतौर पर दुनिया भर में सराहना की जाती है।

फिर भी यह कटु सत्य है कि विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में नुकसान बीस गुना अधिक होता है। अक्सर कोई न कोई प्राकृतिक आपदा का प्रकोप इन देशों में कहीं न कहीं झेलना ही पड़ता है। जब कोई घटना घट जाती है तब काफी हाय तौबा मचती है राहत व पुनर्वास पर करोड़ों रुपये खर्च होते हैं, मगर फिर हम अगली घटना तक जैसे सब कुछ भूल से जाते है। इससे पड़ने वाले दीर्घकालीन सामाजिक व आर्थिक कुप्रभाव पर गौर कर उठाया गया कदम ही स्थायी साबित होगा।

**सियाराम कुन्ज**
**सी 2 डी/69 ए, जनकपुरी, नई दिल्ली-58**

# सूखा—अति कष्टदायी प्राकृतिक आपदा

□ डॉ० राकेश अग्रवाल □

"रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून" यह कहावत कृषि के लिए भी उतनी ही सत्य है जितनी की जीवन के लिए। कृषि में पानी का उतना ही महत्व होता है जितना कि स्वस्थ शरीर में रक्त संचालन का। कृषि में पानी को भूमि से भी महत्वपूर्ण माना जाता है। बिना पानी के कृषि का कोई भी उत्पादन नहीं हो सकता। पानी के अभाव में अच्छे से अच्छा बीज, खाद, श्रम सब व्यर्थ जाता है। सिंचाई साधनों के विकास के बाद भी भारत की दो तिहाई कृषि पूर्णतया वर्षा पर निर्भर करती है। वर्षा में सदैव अनिश्चितता बनी रहती है। कभी अति वर्षा हो जाती है तो कभी सूखा पड़ जाता है। इसीलिए भारतीय कृषि के विषय में कहा जाता है कि "मानसून का जुआ है" है। यह कहावत पुराने समय से चरितार्थ होती आयी है। हर अगले दाव में सफलता की आशा लेकर किसान फसल बोता है पर प्रकृति साथ देती है तो अच्छी फसल मिल जाती है अन्यथा लागत से भी हाथ धोकर किसान अगले दाव की तैयारी करता है। कितनी ही बार उसकी आशा सूखे के परवान चढ़ जाती है।

सूखा भारतीय कृषि के लिए आज भी अभिशाप बना हुआ है। समय-समय पर वर्षा की कमी से उत्पन्न अकाल की स्थिति देश में विषम परिस्थिति पैदा कर देती है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न हो जाती है सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था और भी प्रभावित होती है।

यों तो सूखे का प्रभाव सभी किसानों पर पड़ता है किन्तु सीमान्त और छोटे किसान सूखे से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। इन किसानों को सूखे की स्थिति में गुजारे के लिए अपने साधन तक बेचने पड़ जाते हैं। देश में कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां सूखे की स्थिति बार-बार आ जाती है। इसीलिए इन क्षेत्रों के किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर रहती है। सिंचाई साधनों की कमी के कारण फसल के लिए इन किसानों की आंखें सदैव बादलों की ओर लगी रहती हैं। वर्षा न होने पर वे लाचार हो जाते हैं। सूखे से केवल फसलें ही नष्ट नहीं होतीं बल्कि पीने के पानी की कमी का भी सामना करना पड़ता है। पशुओं के लिए चारा मिलना कठिन हो जाता है। दुग्ध उत्पादन प्रभावित होता है। इसीलिए कृषकों की आय में अत्यधिक उतार-चढ़ाव आते हैं।

**सूखे के कारण**

प्राणीमात्र के लिए सूखा प्राकृतिक अभिशाप है। आदिवासी व ग्रामीण क्षेत्रों में अंधविश्वासी लोग सूखे को किसी न किसी देवता का रुष्ट होना मानकर कुरीति का पालन करते हैं। यहां तक कि सूखे को दूर करने के लिए बलि परम्परा को भी अपनाया जाता है। आज पर्यावरण के प्रति जागरूक लोग बाढ़ और सूखे का कारण प्रदूषण को मानते हैं। मनुष्य द्वारा अन्धाधुंध असंतुलित औद्योगिक विकास के कारण प्रकृति से की जाने वाली छेड़छाड़ से मौसमों में बदलाव आया है। पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। वर्षा अनियमित हो गयी है। जिसके परिणामस्वरूप कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ की विभीषिका दिखाई देती है।

वनों की विवेक रहित कटाई ने धरती की संरचना को प्रभावित किया है। वनों से भूमि का संरक्षण होता है। भारत में वन काटकर धरती को लगातार नंगा करने का आत्मघाती कार्य चल रहा है। वन भूमि को अनुकूल मौसम देकर सूखे से बचा सकते हैं। वन काटकर हम स्वयं ही सूखे को आमंत्रित करते हैं।

**सूखा और उसके प्रभाव**

सूखे से फसलें नष्ट हो जाती हैं। यदि सूखा लम्बे समय तक पड़ जाता है तो भूमि बंजर हो जाती है। प्राणी जगत के भूखों मरने की नौबत आ जाती है। कितने ही भीषण अकालों का इतिहास बताता है कि सूखे की बलिवेदी पर हजारों-लाखों मनुष्य और मवेशी अपना जीवन चढ़ा चुके हैं। सरकार के बफर भण्डारों, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार तथा खाद्यान्न आयात के बाद भी 1987 और हाल ही के सूखे ने देश के अनेक क्षेत्रों को बुरी तरह प्रभावित किया। लोग खाद्यान्न के लिए मोहताज हो गये। सूखे की मार मनुष्यों से ज्यादा जानवरों पर पड़ी जहां मनुष्यों को खाना नसीब नहीं हो रहा था पशुओं की ओर कौन ध्यान देता। बड़ी संख्या में पशु मर गये। सूखा पौधों का जीवन लेकर प्राणियों को मरने के लिए मजबूर कर

देता है ।

सूखे के कारण किसान और खेतिहर मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं । उनके सामने जीवन-यापन की समस्या खड़ी हो जाती है । परिवार के परिवार सूखाग्रस्त क्षेत्रों को छोड़कर काम की तलाश में निकल पड़ते हैं । लोग अपनी जमीन से कट जाते हैं । बेरोजगारी की समस्या और भी विकराल बन जाती है ।

सूखे से पशु धन प्रभावित होने के कारण दूध उत्पादन में कमी आती है । उद्योगों को कच्चा माल न मिलने के कारण औद्योगिक उत्पादन प्रभावित होता है । सूखे से किसान की लागत मिट्टी में मिल जाती है, आय होती नहीं । फलस्वरूप सरकार की आय ही नहीं घटती बल्कि किसानों को राहत राशि और देनी पड़ती है । इस प्रकार सूखा विकास की गति को पीछे कर देता है ।

**सूखे से बचाव के प्रयास**

सूखा प्रकृति चक्र का स्वाभाविक प्रकोप है । मनुष्य इसकी विभीषिका से बचने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा है । इसके लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में विभिन्न स्तरों पर प्रयास किये गये हैं :–

**सिंचाई साधनों का विस्तार**

कृषि कार्य के लिए पानी की आपूर्ति हेतु सिंचाई के साधनों का विस्तार एक महत्वपूर्ण कदम है । इससे वर्षा पर निर्भरता में कमी आती है । सिंचाई साधन उपलब्ध न होने पर किसान केवल वर्षा पर आश्रित होकर लाचार नहीं रहता । सिंचाई साधनों की समुचित उपलब्धता कृषि उत्पादकता को बढ़ाती है । खाद्यान्न तथा व्यापारिक फसलों का विकास होता है ।

सूखा नियंत्रण के लिए भारत में सिंचाई के लिए दो प्रकार के साधनों का विस्तार हुआ–

1. लघु सिंचाई साधन :
   - (अ) कुएं– सतही कुएं, नलकूप ।
   - (ब) तालाब– प्राकृतिक, कृत्रिम ।
2. वृहत एवं मध्यम सिंचाई साधन :
   - (अ) नहरें– बारहमासी, मौसमी तथा स्टोरेज वर्क्स नहरें ।
   - (ब) बांध– बहुउद्देशीय परियोजनायें ।

देश में पिछले चार दशकों में बड़ी संख्या में बहुउद्देशीय परियोजनाएं बनायी गयीं जिनसे एक ओर बाढ़ नियंत्रण संभव हुआ वहीं सिंचाई और बिजली सुविधा का विकास होने से सूखे से संरक्षण भी प्राप्त हुआ । भाखड़ा नांगल, दामोदर घाटी, हीराकुंड, कोसी, रिहन्द, गंडक, तुंगभद्रा, राजस्थान नहर, व्यास, नागार्जुन, चम्बल, रामगंगा, फरक्का आदि परियोजनाएं उल्लेखनीय हैं ।

**सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम**

सूखाग्रस्त क्षेत्रों में रोजगार के लिए परिसम्पत्तियों का सृजन करने के उद्देश्य से 1970-71 में ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक योजनाएं प्रारम्भ की गयीं जिसे 1973 से सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के रूप में प्रतिस्थापित किया गया । सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम की परिकल्पना सूखा प्रभावित क्षेत्रों में सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए भूमि, जल, वनस्पति, पशुधन संसाधनों का अधिक से अधिक प्रयोग करके परिस्थिति के अनुरूप संतुलन बनाये रखने के लिए एक दीर्घकालीन उपाय के रूप में की गयी है । सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :–

1. क्षेत्र के जल तथा भूमि संसाधनों और कृषि जलवायु सम्बन्धी स्थितियों के आधार पर अधिक उत्पादक विधि से बारानी खेती को बढ़ावा देना ।
2. क्षेत्र के जल संसाधनों का विकास तथा उनका अधिक उत्पादक ढंग से प्रयोग करना ।
3. भूमि उपयोग की उचित पद्धतियों को बढ़ावा तथा भूमि व नमी संरक्षण के उपाय करना ।
4. फार्म वानिकी सहित वन रोपण ।
5. चारागाहों और चारा स्रोतों के विकास के साथ-साथ पशुधन का विकास ।
6. बागवानी, रेशम कीट पालन, मछली पालन आदि अन्य विविधीकृत क्रियाकलाप ।

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत क्षेत्रों को सम्मिलित करने के मानदण्ड इस प्रकार हैं :–

(अ) वे क्षेत्र जिनमें औसत वार्षिक वर्षा 750 मिमी० से कम होती है तथा जिनमें सिंचाई के अन्तर्गत कुल बुआई क्षेत्र 20 प्रतिशत से कम है ।

(ब) वे क्षेत्र जिनमें औसत वार्षिक वर्षा 750 और 1125 मिमी० के बीच होती है तथा जिनमें सिंचाई के अन्तर्गत कुल बुआई क्षेत्र 15 प्रतिशत से कम है ।

(स) वे क्षेत्र जिनमें औसत वार्षिक वर्षा 1125 मिमी० से अधिक होती है तथा जिनमें सिंचाई के अन्तर्गत कुल बुआई क्षेत्र 10 प्रतिशत से कम है ।

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम देश के 13 राज्यों, 91 जिलों तथा 615 विकास खण्डों में चल रहा है । कार्यक्रम के अन्तर्गत

भूमि संरक्षण, भूमि विकास, जल संसाधन संरक्षण एवं विकास, वनारोपण तथा चारागाह आदि से सम्बन्धित कार्यों के लिए निर्धारित मानदण्डों के आधार पर किसानों को अनुदान दिया जाता है ।

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार और सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा 50:50 के आधार पर निधियां वहन की जाती हैं । कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित किये गये प्रत्येक खण्ड के लिए राशि का आवंटन उसके भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर किया जाता है । वर्तमान में राशि आवंटन की दर इस प्रकार है :-

| क्र. सं. | भौगोलिक क्षेत्र (वर्ग किमी०) | राशि आवंटन प्रति वर्ष प्रति खण्ड (लाख रुपये में) |
|---|---|---|
| 1. | 500 तक | 15.00 |
| 2. | 500 से 1000 तक | 16.50 |
| 3. | 1000 से अधिक | 18.50 |

हालांकि सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम में माइक्रो वाटर शैड आधारित क्षेत्र के विकास पर बल दिया जाता है, तथापि उन सूखाग्रस्त क्षेत्रों में वाटर शैड विकास को प्राथमिकता दी जाती है जहां छोटे व सीमान्त कृषक, कृषि मजदूर, अनुसूचित जाति या जनजाति आदि श्रेणियों के लोग अधिक संख्या में रहते हैं ।

**मरुभूमि विकास कार्यक्रम**

राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफारिश पर 1977-78 से मरुभूमि विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया । इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य मरुस्थलीकरण को नियन्त्रित करना, मरुभूमि व अर्द्ध मरुभूमि क्षेत्रों का पारिस्थितिक सन्तुलन बनाये रखना तथा इन क्षेत्रों के लोगों के लिए उत्पादन, आय एवं रोजगार के लिए अनुकूल स्थितियां सृजित करना हैं । इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस कार्यक्रम में निम्नलिखित गतिविधियां सम्मिलित हैं–

1. वन रोपण (विशेष रूप से वायुरोधी पौधों का रोपण), चरागाह विकास और रेत के टीलों का स्थिरीकरण ।
2. भू-जल का संरक्षण तथा अनुकूलतम उपयोग ।
3. जल संचयन स्थलों का निर्माण ।
4. नलकूपों/पम्पसेटों को बिजली से चलाने के लिए ग्रामीण विद्युतीकरण ।
5. क्षेत्र की कृषि जलवायु के अनुरूप कृषि, बागवानी, पशुपालन आदि का विकास ।

मरुभूमि विकास कार्यक्रम का संचालन शत प्रतिशत केन्द्रीय सहायता से हो रहा है । निधियों के आवंटन शुष्कता की मात्रा के आधार पर किया जाता है । गर्म मरुस्थली जिलों के लिए 500 लाख रुपये अधिकतम सीमा के आधार पर प्रति 1000 वर्ग किमी० के लिए 24 लाख रुपये प्रति जिले की दर से आवंटित किये गये हैं । ठण्डे मरुस्थली जिलों हिमाचल प्रदेश के लिए 100 लाख रुपये प्रति जिला तथा जम्मू और कश्मीर के लिए 1500 लाख रुपये प्रति जिला के हिसाब से एकमुश्त का प्रावधान किया गया है । यह कार्यक्रम 5 राज्यों के 21 जिलों के 131 प्रखण्डों में चलाया जा रहा है ।

**कार्यक्रमों की प्रगति**

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रारम्भ से मार्च 1991 तक 2487.88 हजार हेक्टेयर क्षेत्र को भूमि व नमी संरक्षण में लाया गया है जबकि मरुभूमि विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 102.71 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में ये सुविधाएं प्रदान की गयी हैं ।

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत 855.36 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में जल संसाधनों के विकास द्वारा सिंचाई की सम्भावनाएं सृजित की गई हैं जबकि मरुभूमि विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 41.18 हजार हैक्टेयर क्षेत्र में जल संसाधनों का विकास किया गया है ।

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के अन्तर्गत 1452.08 हजार हेक्टेयर क्षेत्र को वनारोपण व चारागाह विकास में शामिल किया गया है जबकि मरुभूमि विकास कार्यक्रम में 193.67 हजार हेक्टेयर क्षेत्र को इन सुविधाओं के दायरे में लाया गया है ।

सूखाग्रस्त कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रारम्भ से मार्च 1991 तक 1220.49 करोड़ रुपये खर्च किये गये जबकि मरुभूमि विकास कार्यक्रम पर 349.66 करोड़ रुपये व्यय हुए ।

सूखे के समय सरकार विशेष राहत कार्य चलाती है । जिसमें भुक्तभोगी किसानों को कुछ सम्बल मिलता है । केन्द्र सरकार ने नौवें वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर 1 मार्च, 1990 को "प्राकृतिक विपदा राहत कोष" की स्थापना की । इसके लिए राज्यों का अलग-अलग कोटा निर्धारित कर दिया गया है । 75 प्रतिशत राशि केन्द्र सरकार देती है ।

कृषकों के विशेष रूप से सम्बद्ध होने के कारण सहकारी विभाग द्वारा सूखे से प्रभावित किसानों को ऋण, बीज, उर्वरक, पानी आदि की सुविधाएं सरलता से उपलब्ध करायी जाती हैं । इससे किसानों में भविष्य के प्रति पुनः आशा का संचार होता है ।

स्वैच्छिक सामाजिक संगठन भी सूखे जैसी प्राकृतिक आपदा

## तालिका

**1990-91 में सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम/मरुभूमि विकास कार्यक्रम की उपलब्धियां** (00 हेक्टेयर)

| क्र० सं० | राज्य | भूमि विकास | | | जल संसाधन विकास | | | वानिकी व चारागाह के अन्तर्गत क्षेत्र | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | लक्ष्य | उपलब्धि | प्रतिशत | लक्ष्य | उपलब्धि | प्रतिशत | लक्ष्य | उपलब्धि | प्रतिशत |
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 |
| | **सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम** | | | | | | | | | |
| 1. | आन्ध्र प्रदेश | 12500 | 15948 | 12758 | 5000 | 4392 | 87.84 | 8000 | 4758 | 59.48 |
| 2. | बिहार | 50.18 | 4.49 | 8.95 | 8.95 | 2.74 | 30.61 | 31.56 | 31.80 | 100.76 |
| 3. | गुजरात | 45.00 | 64.35 | 143.00 | 14.00 | 22.01 | 157.21 | 32.60 | 33.70 | 103.37 |
| 4. | हरियाणा | 10.57 | 19.54 | 184.86 | 8.23 | 11.56 | 140.46 | 7.78 | 6.16 | 79.18 |
| 5. | जम्मू व कश्मीर | 23.79 | 13.80 | 58.01 | 5.46 | — | — | 4.08 | — | — |
| 6. | कर्नाटक | 218.84 | 289.20 | 132.15 | 5.61 | 24.20 | 431.37 | 160.47 | 102.54 | 63.90 |
| 7. | मध्य प्रदेश | 73.00 | 41.27 | 56.53 | 7.83 | 4.82 | 61.56 | 86.00 | 37.39 | 43.48 |
| 8. | महाराष्ट्र | 161.16 | 235.18 | 145.93 | 63.96 | 33.07 | 51.70 | 112.70 | 239.29 | 212.32 |
| 9. | उड़ीसा | 74.52 | 13.42 | 18.01 | 47.84 | 2.61 | 5.46 | 68.23 | 32.74 | 47.98 |
| 10. | राजस्थान | 72.21 | 52.33 | 74.47 | 17.37 | 4.07 | 23.43 | 10.58 | 22.94 | 216.82 |
| 11. | तमिलनाडु | 242.20 | 184.48 | 76.17 | 11.80 | 7.32 | 62.03 | 106.71 | 56.57 | 53.01 |
| 12. | उत्तर प्रदेश | 150.00 | 155.16 | 103.44 | 60.00 | 44.02 | 73.37 | 90.00 | 96.02 | 106.69 |
| 13. | पश्चिम बंगाल | 19.95 | 139.23 | 697.89 | 22.88 | 10.42 | 45.54 | 36.35 | 58.54 | 161.05 |
| | कुल | 1266.42 | 1371.93 | 108.33 | 323.76 | 210.76 | 65.06 | 827.06 | 765.27 | 92.53 |
| | **मरुभूमि विकास कार्यक्रम** | | | | | | | | | |
| 1. | गुजरात | 5.75 | 12.84 | 223.30 | 3.80 | 10.45 | 275.00 | 15.40 | 17.65 | 114.61 |
| 2. | हरियाणा | 44.09 | 33.17 | 75.23 | 25.42 | 9.86 | 38.79 | 34.12 | 20.12 | 58.97 |
| 3. | हिमाचल प्रदेश | 6.91 | 6.81 | 98.55 | 2.68 | 0.27 | 10.07 | 5.08 | 5.00 | 98.43 |
| 4. | जम्मू व कश्मीर | 11.15 | 2.40 | 21.52 | 30.50 | 11.72 | 38.43 | 8.10 | 15.32 | 189.14 |
| 5. | राजस्थान | 169.27 | 59.11 | 34.92 | 37.04 | 30.55 | 82.48 | 113.58 | 86.85 | 76.47 |
| | कुल | 237.17 | 114.33 | 48.21 | 99.44 | 62.85 | 63.20 | 176.28 | 144.94 | 82.22 |

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट 1990-91 ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मन्त्रालय, भारत सरकार ।

के समय प्रभावित लोगों का सहयोग करने के लिए आगे आते हैं । वास्तव में किसी भी प्राकृतिक विपत्ति का सामना व्यक्ति, समाज और सरकार के मिले-जुले प्रयत्नों से ही सम्भव है । बिचौलियों पर निगरानी रखकर सूखा नियन्त्रण के सरकारी प्रयत्नों को प्रभावी बनाने में योगदान किया जा सकता है, जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है ।

एस०एस०वी० (पो०ग्रे०) कॉलिज,
"हिमदीप" राधापुरी,
हापुड़-245 101 (उ.प्र.)

# प्राकृतिक आपदाओं से निपटने के स्थायी उपाय

□ सत्यपाल मलिक □

समय पर वर्षा का न होना, भयंकर बाढ़, भूकम्प, महामारी एवं सूखा पड़ना आदि जैसी प्राकृतिक आपदाएं हमारी प्रगति की रफ्तार को अवरुद्ध करती हैं इसके साथ साथ विनाश लीला भी करती हैं। हमारे ग्राम्य जीवन की संरचना को तहस-नहस करने में बाढ़ प्रतिवर्ष भयानक भूमिका निभाती है। उफनते जल के प्रकोप से करोड़ों रुपये की खड़ी फसल नष्ट हो जाती है। अनगिनत पशु इसके शिकार हो जाते हैं तथा हजारों व्यक्ति बेघर हो जाते हैं। बाढ़ से लोगों के जीवन तथा संपत्ति की बर्बादी एक तरह से वार्षिक घटना बन गयी है और विकास कार्यों पर व्यय होने वाली धनराशि का एक बहुत बड़ा भाग राहत अनुदान् के रूप में व्यय हो जाता है। हमें अस्थायी राहत के स्थान पर ऐसे विकल्प खोजने होंगे जिनके द्वारा हम इस समस्या का कोई स्थायी समाधान ढूंढ सकें।

हमारे देश में लगभग 4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र अर्थात् भौगोलिक क्षेत्र का 8वां हिस्सा ऐसा है जहां बाढ़ आने की अधिक संभावना बनी रहती है। अनुमान है कि प्रतिवर्ष औसतन 77 लाख हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित होता है जिसमें 35 लाख हेक्टेयर कृषि क्षेत्र है। प्रतिवर्ष बाढ़ से 1439 जानें चली जाती हैं। 1977 में सबसे अधिक लोग (11,316) बाढ़ के शिकार हुए। 1953 से 1987 तक बाढ़ों से कुल 26,800 करोड़ रुपये की क्षति हुई, जबकि 1985 में बाढ़ से 4,059 करोड़ रुपये की क्षति हुई थी।

बाढ़ किसी भी क्षेत्र के कृषि विकास की प्रक्रिया का अवरोधक तत्त्व है। बाढ़ की आशंका से उत्पन्न असुरक्षा की भावना किसानों को कृषि में दीर्घकालीन निवेश करने से रोकती है। इसलिए अब तक पिछड़ापन बना हुआ है।

ज्यादा बरसात व बरसात के असामान्य वितरण और धरा पर बरसात के पानी के असामान्य प्रवाह अथवा असामान्य रास्तों के कारण बाढ़ें पैदा होती हैं। इनमें प्रकृति के साथ-साथ मानवीय छेड़छाड़ भी एक प्रमुख कारण है।

सामान्यतया नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र में ज्यादा बरसात होने से बाढ़ की स्थिति पैदा होती है। बाढ़ों के आने का एक स्वाभाविक कारण जल प्रणालियों का गहरे से छिछला होना है। जोकि तलहटी में मिट्टी गाद के बढ़ने के कारण होता है। हिमालयी क्षेत्रों में भू-स्खलनों से प्राकृतिक जल प्रणालियों को काफी नुकसान पहुंचा है। मौसम की अनिश्चितता के कारण भी प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप होता है।

वन विनाश का बाढ़ों पर प्रत्यक्ष असर पड़ा है। 1972 से 1982 की अवधि में वन क्षेत्रों में लगभग 19 प्रतिशत की कमी आई है। उपग्रह द्वारा लिये गये चित्रों के अध्ययन से भी यह तथ्य सामने आये हैं कि अब केवल 11 प्रतिशत क्षेत्र में ही सघन वन हैं और शेष क्षेत्र वनों से अब उतना आच्छादित नहीं रहा। वनों की द्रुतगति से की जा रही कटाई के फलस्वरूप धरती में जल को पकड़ पाने की क्षमता समाप्त हो जाती है। जब धरती जंगलों से ढकी थी उस समय वर्षा का पानी रुक-रुक कर धीरे धीरे नदियों में पहुंचता था। आज किसी क्षेत्र विशेष से जिस पानी को नदी में पहुंचने में मात्र कुछ घंटे लगते हैं, जंगल या सघन वृक्ष होने पर वही पानी महीनों बाद पहुंचेगा। परिणामस्वरूप तेज वर्षा के तुरन्त बाद नदियाँ उफनने लगती हैं और बाढ़ की स्थिति बन जाती है। जब धरती नग्न हुई तो मिट्टी का कटाव भी बढ़ा। यह मिट्टी नदियों के धरातल पर जमती गयी और नदियों में लगातार जल ग्रहण क्षमता का ह्रास हुआ। नदियां ही नहीं देश के लाखों जलाशय और कृत्रिम जलाशय भी मिट्टी से पटने लगे।

**बाढ़ नियंत्रण**

वर्ष 1954 में देश के अनेक भागों में विनाशकारी बाढ़ों ने राष्ट्र का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित किया तथा एक राष्ट्रीय बाढ़ प्रबंध कार्यक्रम चलाया गया। इस कार्यक्रम को तीन चरणों में विभाजित किया गया– तात्कालिक, अल्पकालीन और दीर्घकालीन कार्यक्रम। तात्कालिक चरण में सघन आंकड़ा संग्रह और बाढ़ सुरक्षा के तात्कालिक उपायों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। अल्पकालीन कार्यक्रम दूसरी योजना के लगभग साथ-साथ ही शुरू हुआ। इसमें तटबंधों के निर्माण कुछ नगरों की बाढ़ रक्षा और गांवों को नदी के जल स्तर से ऊपर उठाने जैसे कार्यक्रम शामिल थे। दीर्घकालीन चरण में संग्रह जलाशयों के निर्माण और पूरे किये जा चुके कार्यों से होने वाले फायदों

को स्थायी बनाने के साथ-साथ तटबंध निर्माण तथा नदी जल निर्माण से संबंधित कार्यक्रम शामिल थे ।

**उपलब्धियां**

राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किये जाने के बाद से अब तक विभिन्न समस्याओं और स्थानीय अवस्थाओं के अनुसार अलग-अलग राज्यों में बाढ़ से बचाव करने के विभिन्न दीर्घकालीन और अल्पकालीन उपाय लागू किए गए हैं । 1954 से सातवीं योजना के अंत तक बाढ़ नियंत्रण के क्षेत्र में 2,710 करोड़ रुपये व्यय किये जा चुके हैं । आठवीं योजना में 1623.37 करोड़ रुपये के परिव्यय की मंजूरी दी गयी है । जिसमें से 1341.37 करोड़ रुपये राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा 282 करोड़ रुपये केन्द्र द्वारा व्यय किए जायेंगे । बाढ़ की रोकथाम पर पंचवर्षीय योजनाओं में किए गए व्यय का विवरण नीचे दी गयी तालिका में दिया गया है–

**बाढ़ सुरक्षा पर योजना व्यय**

| पंचवर्षीय योजना | वर्ष | बाढ़ सुरक्षा पर खर्च (करोड़ रुपयों में) |
|---|---|---|
| पहली योजना | 1951-56 | 13.77 |
| दूसरी योजना | 1956-61 | 49.15 |
| तीसरी योजना | 1961-66 | 86.00 |
| वार्षिक योजना | 1966-69 | 43.61 |
| चौथी योजना | 1969-74 | 171.78 |
| पांचवी योजना | 1974-78 | 298.61 |
| वार्षिक योजना | 1978-80 | 228.47 |
| छठी योजना | 1980-85 | 596.07 |
| सातवीं योजना | 1985-90 | 941.58 |

1954 से 1989 तक लगभग 15,600 किलोमीटर तटबंधों और 33,100 किलोमीटर नालों का निर्माण किया गया । इसके अलावा इस अवधि में नगरों को बाढ़ से बचाने की 400 योजनाएं पूरी की गयीं और 4,700 गांवों को नदी के जल स्तर से ऊंचा उठाया गया । इन कार्यों पर कुल 2,500 करोड़ रुपये व्यय किए गए तथा लगभग एक करोड़ पैंतीस लाख हेक्टेयर क्षेत्र को बाढ़ से बचाया गया । समुद्र तट के कटाव को रोकने के लिए केरल में विशेष रूप से तट रक्षण के कार्यक्रम शुरू किये गये । मार्च 1990 तक कटाव की आशंका वाले कुछ 320 किलोमीटर समुद्र तट में से 311 किलोमीटर को बचाया जा चुका है । इसके अलावा कई जलाशय परियोजनाएं भी पूरी की गयीं, जिनसे निचले इलाकों में बाढ़ से होने वाले नुकसान को कम करने में मदद मिली । इनमें कुछ उल्लेखनीय परियोजनाएं– महानदी पर बना हीराकुंड बांध, दामोदर नदी पर बने बांध, सतलुज नदी पर भाखड़ा बांध, व्यास नदी पर पोंग बांध और ताप्ती नदी पर उकाई बांध ।

**पूर्वानुमान**

सरकार ने 1954 में बाढ़ पूर्वानुमान संगठन की स्थापना की थी । इसका उद्देश्य बाढ़ के बारे में चेतावनी देना था, ताकि राहत और सहायता कार्य करने वाली एजेंसियां बाढ़ से निपटने के लिए पूरी तरह चौकस हो जायें और बाढ़ नियंत्रण तथा रखरखाव का कार्य करने वाल संगठन किसी भी स्थिति से निपटने के लिए अपने आपको तैयार कर लें । केन्द्रीय बाढ़ पूर्वानुमान संगठन के उत्तरी अंचल का कार्यालय पटना में और दक्षिणी अंचल का हैदराबाद में है । इस समय 157 बाढ़ पूर्वानुमान केन्द्र कार्य कर रहे हैं । इनसे बाढ़ की आशंका वाली देश की अधिकांश अंतर्राज्यीय नदियों से संबंधित जानकारी प्राप्त होती है । प्रतिवर्ष लगभग 5,500 पूर्वानुमान जारी किए जाते हैं । इन खंड कार्यालयों के नियंत्रण कक्षों द्वारा जारी की गयी चेतावनी बाढ़ से निपटने और राहत कार्य चलाने के लिए बहुत लाभदायक पाई गयी ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्तरवर्ती पंचवर्षीय योजनाओं में हालांकि बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम के लिए परिव्यय में हर वर्ष वृद्धि की जाती रही है और अधिक क्षेत्र संरक्षित किए गए हैं फिर भी बाढ़ से होने वाली क्षति का मूल्य अधिक होता जा रहा है । जिस तरीके से राहत कार्यों के लिए निर्दिष्ट राशि खर्च की जाती है उसकी समीक्षा की जानी चाहिए । मौजूदा निर्माण कार्यों की इतनी अधिक क्षति होने का एक कारण है उनका उचित अनुरक्षण न किया जाना । इसके अतिरिक्त बाढ़कृत मैदानों में अनधिकृत प्रवेश को रोकने के लिए बनाए गए विभिन्न कानूनों के बावजूद इन क्षेत्रों में अनधिकृत प्रवेश के कारण बाढ़ से नुकसान में वृद्धि हो रही है । इनकी ओर पर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि बाढ़ से हो रहे नुकसान को कम किया जा सके । बाढ़ से स्थायी मुक्ति के लिए बहुआयामी दीर्घकालीन योजनाओं को अमल में लाने की आवश्यकता है । इन योजनाओं में सर्वाधिक जोर पर्यावरण पर देना होगा जिसमें जनता की भागीदारी भी अत्यंत आवश्यक है ।

**सहायक संपादक**
**(योजना) प्रकाशन विभाग**

# आवश्यक है सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम व मरुभूमि विकास कार्यक्रम की सफलता

□ राजेश कुमार व्यास □

भारत गांवों का देश है, जहाँ की 77 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। गांवों में रहनेवाली जनसंख्या की आय का प्रमुख स्त्रोत है कृषि। कृषि ग्रामीण जनसंख्या के जीविकोपार्जन का महत्वपूर्ण साधन ही नहीं बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। अतः कृषि के विकास हेतु भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने तथा कृषि भूमि के सुधार व संरक्षण पर ध्यान दिये जाने की वर्तमान में महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

हालांकि भारत सरकार के ग्रामीण विकास विभाग ने कृषि भूमि सुधार हेतु कई कार्यक्रमों का क्रियान्वयन गत वर्षों में किया है। परंतु इन कार्यक्रमों में भी सफलता तभी मिल सकती है जब जनता भी इन कार्यक्रमों में भाग ले। वर्तमान में ग्रामीण विकास विभाग द्वारा जहाँ मरुभूमि को बढ़ने से रोकने, रेगिस्तानी इलाकों में सूखे के कुप्रभावों को समाप्त करने तथा प्रभावित क्षेत्रों में परिस्थितिकीय संतुलन बहाल करके कृषि क्षेत्रों में उत्पादकता तथा जल संसाधनों को बढ़ाने के उद्देश्य से 'मरुभूमि विकास कार्यक्रम' क्रियान्वित किया जा रहा है वहीं सूखे की आशंका वाले क्षेत्रों में भूमि तथा भूमि विकास, जल संसाधन व नमी संरक्षण तथा विकास वनारोपण व चारागाह विकास हेतु 'सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम' क्रियान्वित किया जा रहा है।

वस्तुतः मरुभूमि विकास कार्यक्रम तथा सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम ग्रामीण इलाकों के लिए वरदान साबित हो रहे हैं। जहाँ 'मरुभूमि विकास कार्यक्रम' में पशुधन, भूमि तथा जल की उत्पादकता को बढ़ाकर उसे स्थिर करते हुए लोगों की आर्थिक दशाओं में सुधार के प्रभावी प्रयास किये जा रहे हैं वहीं ग्रामीण इलाकों में सूखे के प्रभावों को समाप्त करने तथा पर्यावरण संतुलन को बहाल करने के प्रयास स्वरूप क्रियान्वित किया जा रहा 'सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम' भी कृषि विकास में महत्वपूर्ण साबित हो रहा है।

वर्तमान में देश के तेरह राज्यों के 91 जिलों के 615 प्रखंडों में सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम और 5 राज्यों के 21 जिलों के 123 प्रखंडों में मरुभूमि विकास कार्यक्रम पर अमल किया जा रहा है। 1973 में समन्वित क्षेत्र विकास कार्यक्रम के अंतर्गत शुरू किये गये सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम में जो धनराशि खर्च की जाती है उसका 50 प्रतिशत खर्च केन्द्र सरकार द्वारा तथा 50 प्रतिशत खर्च सम्बद्ध राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

जबकि 1977-78 में मरुभूमि के विस्तार की प्रक्रिया को नियंत्रित करने तथा रेगिस्तानी इलाकों में पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने के दृष्टिकोण से आरंभ किये गये मरुभूमि विकास कार्यक्रम का शत प्रतिशत खर्च केन्द्रीय सहायता से ही पूरा किया जाता है।

सूखाग्रस्त कार्यक्रम के अंतर्गत देश के शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में कार्य आरंभ किया गया। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पर्यावरण में ह्रास पाया जाता है और इन क्षेत्रों में भूमि का कटाव, पानी तथा नमी की कमी और वातावरण को सुरक्षा प्रदान करने वाली वनस्पतियों की कमी पायी जाती है जिसके कारण फसलों को क्षति पहुंचती है। फसलों को क्षति पहुँचने से ग्रामीण लोगों की दशा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः इस हेतु सूखाग्रस्त कार्यक्रम के अंतर्गत भूमि जल व अन्य प्राकृतिक साधनों के संतुलन विकास के जरिये सूखे से बचाव के उपायों को क्रियान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम में व्यय का हिस्सा भूमि, जल, वन तथा चारागाह विकास जैसे कार्यकलापों पर खर्च किया जाता है।

सूखे से बचाव हेतु हालांकि सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के अंतर्गत गत वर्षों में भूमि, जल, वन तथा चारागाह विकास के महत्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे हैं। किन्तु इन कार्यक्रमों में अभी भी तेजी नहीं आ पायी है। यही कारण है कि गत वर्षों के दौरान कार्यक्रम के अंतर्गत जो लक्ष्य रखे गये उनकी उपलब्धि नहीं हो पायी। सूखाग्रस्त कार्यक्रम के अंतर्गत जिन क्षेत्रों के लिए सरकार द्वारा वार्षिक आवंटन किया जाता है उनमें भूमि के आकार प्रभाव को ठीक करने तथा भूमि संरक्षण हेतु 30 प्रतिशत, जल संसाधन हेतु 20 प्रतिशत, चारागाह विकास व वनारोपण हेतु 25 प्रतिशत, परियोजना प्रशासन हेतु 10 प्रतिशत तथा अन्य कार्यकलापों हेतु 15 प्रतिशत राशि का

आवंटन किया जाता है । 1991-92 के दौरान सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के लिए 112 करोड़ रुपये आवंटित किये गये हैं । जिससे अब तक 48.26 करोड़ रुपये खर्च किये जा चुके हैं । 1991-92 के दौरान सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम में तीन प्रमुख क्षेत्रों भूमि विकास, जल संसाधन विभाग तथा वानिकी व चारागाह विकास हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किये गये हैं ।

मरुभूमि विकास कार्यक्रम के अंतर्गत रेगिस्तानी इलाकों में सूखे के प्रभावों को रोकने, बालू के टीलों के बढ़ाव को रोकने, हरित पट्टी लगाने, बंजर भूमि में घास के कार्यक्रम को बढ़ाने आदि के कार्यक्रम क्रियान्वित किये जाते हैं । मरुभूमि विकास कार्यक्रम के अंतर्गत प्रति 100 वर्ग किमी. के लिए 24 लाख रूपये की दर से आवंटन किया जाता है । लेकिन प्रत्येक जिले के लिए इस आवंटन की अधिकतम सीमा 500 लाख रुपये निर्धारित की गयी है । वर्तमान में यह कार्यक्रम लगभग 5.55 लाख वर्ग किलोमीटर तथा लगभग 707.50 लाख कुल आबादी के लिए चलाया जा रहा है । कार्यक्रम के अंतर्गत जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के शुष्क क्षेत्रों का लगभग 3.62 लाख वर्ग किमी. का क्षेत्र तथा लगभग 150 लाख आबादी भी शामिल है । शीत मरुभूमि के लिए हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक जिले को 100 लाख रुपये की दर से तथा जम्मू कश्मीर के प्रत्येक जिले को 150 लाख रुपये की दर से एकमुश्त रकम देने का भी प्रावधान है ।

1991-92 के दौरान मरुभूमि विकास कार्यक्रम के लिए 51 करोड़ रुपये आवंटित किये गये जिनमें से नवम्बर 1991 तक 30.50 करोड़ रुपये (अनन्तिम) खर्च किये गये हैं ।

यद्यपि सरकार द्वारा चलाये जा रहे सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम व मरुभूमि विकास कार्यक्रम कृषि भूमि के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं परंतु इन कार्यक्रमों में जन-भागीदारी का होना भी नितांत आवश्यक है । वर्तमान में जन भागीदारी से ही इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को और अधिक गति मिल सकती है ।

**सह संपादक, "मरु व्यवसाय चक्र"**
**धर्मनगर द्वार के बाहर,**
**ओझा भवन के पीछे,**
**बीकानेर-334 004 (राज.)**

# प्राकृतिक आपदाओं से निपटने हेतु सामूहिक प्रयास

□ डा० सी० एम० चौधरी □

मनुष्य वातावरण की उपज है । वातावरण के अन्तर्गत जलवायु, भौगोलिक स्थिति, मिट्टी, वन, खनिज सम्पदा, धरातल, वायु, प्रकाश आदि सम्मिलित हैं । प्रकृति और मानव जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । मानव प्रकृति की गोद में पैदा होता है, पलता है, बड़ा होता है और मृत्यु को प्राप्त होता है । प्रकृति मनुष्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है तथा बाधायें भी उपस्थित करती है । आवश्यकता आविष्कार की जननी है । कहीं ऊंचे पर्वत शिखर हैं तो कहीं घने जंगल । कहीं समतल उपजाऊ मैदान हैं तो कहीं बहती नदियां एवं झरने । कहीं घनी आबादी है तो कहीं जनाभाव । यह सब प्राकृतिक कारणों का ही परिणाम है ।

प्राकृतिक आपदाओं के अनेक रूप हो सकते हैं जिनमें प्रमुख हैं–

**(1) अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि :–** भारत में मानसून से वर्षा होती है कभी मानसून अधिक आ जाने से अतिवृष्टि होती है । जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । कई गांव तथा शहरों के बाढ़ की चपेट में आने से जन, धन एवं माल की हानि होती है । उपजाऊ मिट्टी का कटाव हो जाता है । खड़ी फसलें चौपट हो जाती हैं । यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों को भी नुकसान उठाना पड़ता है । इनको नुकसान होने से एक स्थान का दूसरे स्थान से सम्पर्क टूट जाता है ।

अनावृष्टि या सूखे के कारण भी कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

**(2) भूकम्प एवं तूफान :–** प्राकृतिक विपदाओं में भूकम्प एवं तूफान भी प्रमुख हैं जिनके कारण मकान ध्वस्त हो जाते हैं । लोग बेघर हो जाते हैं । जन, धन एवं माल की हानि होती है ।

**(3) महामारियां :–** प्राकृतिक कारणों से महामारियां भी फैलती हैं यह मानव जाति एवं पशुओं में हो सकती है जिसके कारण दोनों ही वर्गों को खतरा उत्पन्न हो जाता है । फसलों को भी रोग लग जाते हैं जिससे कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

**(4) अग्नि :–** प्राकृतिक विपदाओं में अग्निकाण्ड भी महत्वपूर्ण हैं । यह जंगलों में स्वतः ही लग जाती है । बहुमंजिली इमारतों में भी बिजली की गड़बडी के कारण आग लग जाती है । अग्नि कुछ भी नहीं छोड़ती है और इससे काफी नुकसान होता है ।

**प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के उपाय**

प्राकृतिक विपदायें जैसे अतिवृष्टि,अनावृष्टि, बाढ़, भूकम्प, तूफान से महामारियां, अकाल उत्पन्न हो जाते हैं । इन विपदाओं से निपटने के लिए दो प्रकार के उपाय काम में लिये जा सकते हैं । वे निम्नलिखित हैं–

**(1) निवारक उपाय :–** प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के लिए निवारक उपाय काम में लिये जा सकते हैं । रोग का इलाज करने के पहले ही रोग को रोकने के उपाय किये जाने चाहिए । वर्षा के पूर्व ही जिन स्थानों पर बाढ़ आने का खतरा बना रहता है वहाँ पहले से ही सरकार, जनता एवं प्रशासन तंत्र द्वारा ऐसे उपाय कर देने चाहिए जिससे कि बाढ़ आने पर जन, धन एवं माल की कम से कम हानि हो । यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों को भी पहले से ही ठीक कर देना चाहिए । इसके लिए पिछले अनुभव को आधार मानकर चौकसी बरती जानी चाहिए । मनुष्य, पशुधन एवं फसलों में होने वाले रोग एवं महामारियों के लिए भी निवारक प्रतिबंध या उपाय काम में लेने चाहिए । इसके लिए रोग एवं महामारी लगने के पूर्व ही दवाइयों का वितरण एवं उपयोग किया जाना चाहिए । भूकम्प एवं तूफान आने वाले क्षेत्रों में आवास नीति ऐसी बनायी जाये कि वे भूकम्प एवं तूफान से कम से कम प्रभावित हों । ऐसे क्षेत्रों में विशेष उड़नदस्ते को पहले से ही चौकसी भी रखनी चाहिए । इस प्रकार निवारक उपायों से प्राकृतिक विपदाओं को रोका नहीं जा सकता है लेकिन इनसे होने वाली हानि को न्यूनतम किया जा सकता है ।

**(2) विपदाओं से निपटने के उपाय :–** जब प्राकृतिक विपदायें उत्पन्न हो जाती हैं चाहे अतिवृष्टि हो या अनावृष्टि, अग्नि हो या भूकम्प, बाढ़ हो या रोग एवं महामारियां ऐसी स्थिति में प्रभावित क्षेत्र की स्थिति का विस्तृत एवं शीघ्रातिशीघ्र जायजा लेकर आवश्यक कार्यवाही की जानी चाहिए जिससे कि

प्रभावित लोगों को समय पर पर्याप्त राहत दी जा सके और देरी के कारण होने वाली और अधिक हानि को रोका जा सके।

**सामूहिक प्रयास आवश्यक**

प्रजातन्त्र में सरकार जनता द्वारा, जनता हेतु तथा जनता की होती है। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक विपदाओं से निपटने के लिए निवारक तथा निपटने के उपायों में सरकार, प्रशासन एवं जनता की सामूहिक जिम्मेदारी है। कोई भी एक पक्ष इन विपदाओं पर प्रभावी ढंग से नियमन एवं नियंत्रण नहीं पा सकता है और प्रभावित क्षेत्र को पर्याप्त एवं समय पर राहत दे पाना संभव नहीं होता है। इन विभिन्न प्रयासों का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

**(1) सरकारी प्रयास :–** प्राकृतिक विपदाओं को रोकने तथा निपटने के उपायों को प्रभावी रूप देने के लिए सरकार द्वारा एक राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदाओं का निवारक एवं निपटने के कोष की स्थापना करनी चाहिए। इस कोष में से राज्य सरकारों को भी वित्तीय साधनों का हस्तान्तरण प्रतिवर्ष किया जाना चाहिए। जिसका आधार भूतकालीन प्राकृतिक विपदायें तथा वर्तमान में घटी विपदाओं की प्रकृति होना चाहिए। राज्य सरकारों को भी ऐसे कोष का गठन राज्य स्तर पर करके इसे सुदृढ़ वित्तीय आधार देना चाहिए। प्रत्येक जिले में इसके लिए वितरण का अधिकार जिलाधीश को दिया जाना चाहिए। केन्द्र तथा राज्य सरकारों को अपने-अपने स्तर पर ऐसी विपदाओं के उत्पन्न होने के कारण, उनके रोकने के उपायों तथा उत्पन्न होने पर निपटने के उपायों का विस्तृत सर्वेक्षण एवं प्रतिवेदन तैयार करना चाहिए और आवश्यक दिशा निर्देश देने चाहिए।

**(2) प्रभावी प्रशासन तंत्र :–** प्राकृतिक विपदाओं को रोकने तथा उनके उत्पन्न होने पर निपटने के लिए कुशल एवं प्रभावी प्रशासन तंत्र आवश्यक है। समय से पूर्व ही अतिवृष्टि, बाढ़, भूकम्प, रोग, महामारियां, दुर्घटनाएं आदि का जायजा लेने की क्षमता वाले प्रशासनिक अधिकारियों का एक अलग से ही वर्ग तैयार किया जाना चाहिए। जब विपदाएं उत्पन्न हो गई हैं तो तत्काल स्थिति का सही आंकलन एवं जायजा लेकर जान माल की हानि को ध्यान में रखते हुए राहत कार्य में जुटने की क्षमता वाले अधिकारियों को ऐसी जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए। प्राकृतिक विपदाओं के उत्पन्न होने पर उनसे निपटने के लिए प्रशासनिक अधिकारियों को पूर्ण स्वायत्तता दी जानी चाहिए और उसके साथ ही उनकी सार्वजनिक हिसाबदेयता भी बढ़ेगी। इन दोनों के कारण अधिकारी प्रोत्साहित होंगे तथा कार्य को प्रभावी रूप से लागू कर सकेंगे।

**(3) जन सहयोग :–** सब कार्यों के लिए सरकार पर निर्भर रहना ठीक नहीं है। 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' वाली कहावत से इन विपदाओं का समाधान नहीं होता है। प्राकृतिक विपदाओं को रोकने तथा उत्पन्न होने पर निपटने का प्रयास स्थानीय जनता के सामूहिक प्रयासों से संभव हो सकता है। पहले ही जनमानस इन विपदाओं से निपटने के लिए सदा तत्पर रहे तो अधिक जान माल की हानि को रोका जा सकता है। ऐसी विपदायें उत्पन्न होने पर प्रशासन को तुरन्त इसकी सूचना देना भी जनता का कर्त्तव्य है। कोई राहत कार्य इन विपदाओं से निपटने के लिए सरकार द्वारा चलाने पर सरकार, प्रशासन तन्त्र को जनता का अपेक्षित सहयोग मिलना चाहिए न कि सरकार एवं प्रशासन तंत्र को असहयोग देकर प्रभावित लोगों के घावों पर नमक छिड़कने का कार्य किया जाए। स्थानीय लोगों को आपसी सद्भाव एवं सहयोग से ऐसी विपदाओं से निपटने के लिए मानसिक, शारीरिक एवं वित्तीय दृष्टि से तत्पर रहना चाहिए।

**निष्कर्ष–** उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्राकृतिक विपदाओं को रोकने तथा उनसे निपटने के लिए सभी स्तरों पर सच्चाई एवं लगन के साथ प्रयास करने होंगे। इसके लिए सरकार, प्रशासन तन्त्र तथा जनता के सामूहिक प्रयास एवं सहयोग की आवश्यकता है। यदि ऐसा किया जाता है तो जान, माल एवं धन की अपार क्षति को रोका जा सकता है तथा समय पर पर्याप्त राहत देकर प्रभावित क्षेत्र को होने वाली और हानि को रोका जा सकता है।

**सह प्रोफेसर (रीडर)**
**1347 जयपथ, बरकत नगर,**
**जयपुर-302 015**

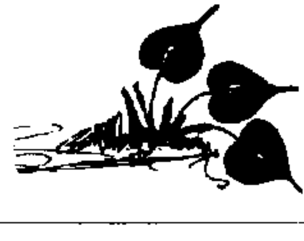

# ग्रामीण विकास पर मुख्यमंत्रियों का सम्मेलन

□ प्रधानमंत्री का उद्घाटन भाषण □

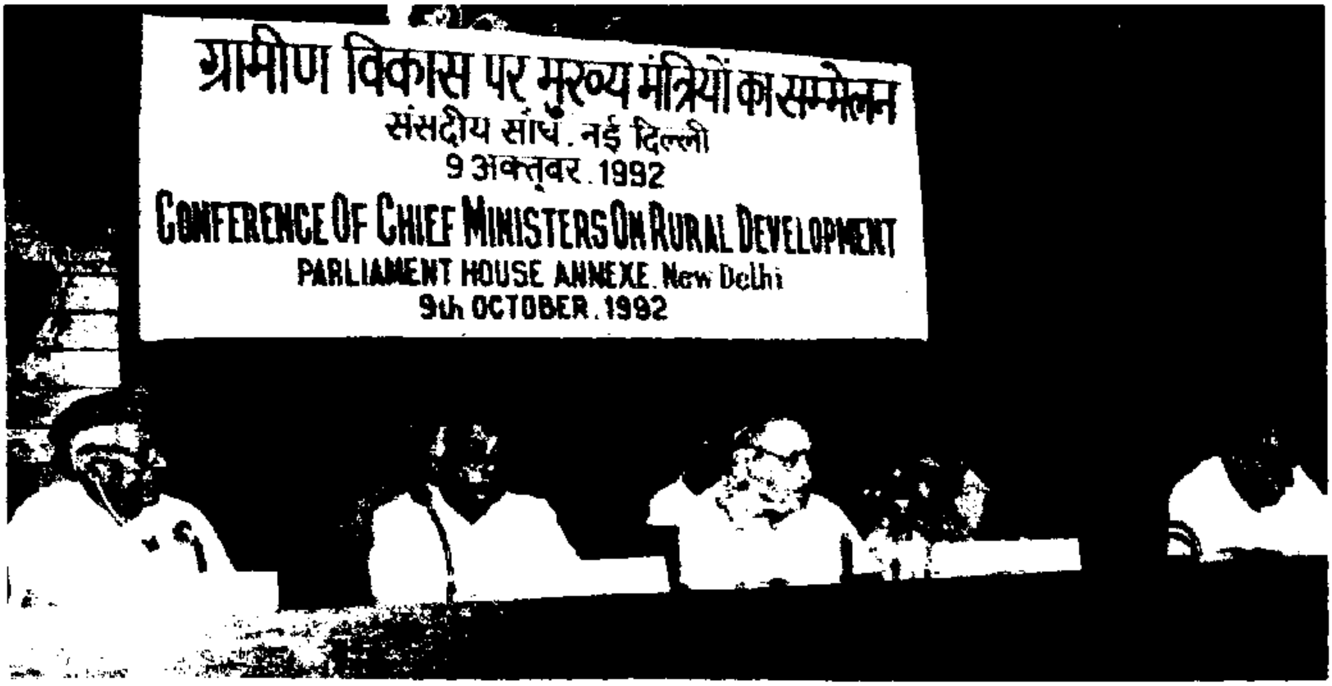


ग्रामीण विकास पर मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन का आज यहां उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने कहा :

"मुझे यह जानकर काफी आश्चर्य और निराशा हो रही है कि ग्रामीण विकास पर मुख्यमंत्रियों की शायद यह पहली बैठक है । वास्तव में ऐसी अनेक बैठकें हो जानी चाहिए थीं, क्योंकि मैं नहीं समझता कि भारत के लिए ग्रामीण विकास से अधिक महत्वपूर्ण और तात्कालिक कोई और कार्यक्रम हो सकता है । इसका यही अर्थ है कि अब तक हम ग्रामीण विकास के कुछेक मुद्दों से ही उलझते रहे हैं; ग्रामीण विकास को पूर्ण रूप से, एक विचारधारा के रूप में, उसके छोटे-छोटे हिस्सों को न देखकर ग्रामीण समाज की पूर्णता के दृष्टिकोण, जैसा कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का स्वप्न था, की ओर हमें लौटना है । अब समय आ गया है कि हम ऐसा करें, और इसीलिए मुख्यमंत्रियों को यहां आमंत्रित किया गया था जो दिल्ली में बैठे किसी भी व्यक्ति से कहीं अधिक गांवों के विकास के बारे में जानते हैं । हम भी गांव में रहे हैं इसलिए वहां के बारे में थोड़ा-बहुत जानते हैं । बस, हम इतना ही दावा कर-सकते हैं ।

एक ही नई बात, जो मैं आपको बताना चाहता हूं वो यह है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना में हमने सोच समझकर एक फैसला किया है, एक ऐसा फैसला जिसे शायद कुछ ज्यादा ही साहसी समझा गया है, यह है ग्रामीण विकास के लिए बजट प्रावधानों को दुगुना करने का फैसला । हमने 14,000 करोड़ रुपये से शुरुआत की और कलम के एक ही इशारे से उपाध्यक्ष ने जो देखने में शायद बहुत छोटे लगते हैं मगर हिम्मत में बहुत बड़े हैं–मुझसे सहमति जताई कि वो इसे किसी तरह 14,000 करोड़ रुपए से बढ़ाकर 30,000 करोड़ रुपये कर देंगे । अब 30,000 करोड़ रुपये अपने आप में, मैं समझता हूं, हमारे देश के आकार के हिसाब से पर्याप्त नहीं हैं । मैं जानता हूं यह काफी नहीं है । मगर जैसे-जैसे हम योजना कार्यान्वित करते जाएंगे, हम देखेंगे कि जहां कहीं भी इसके लिए अधिक पैसा उपलब्ध होगा, हम इस काम में लगा देंगे । तीस हजार करोड़ रुपये तो कम से कम है, शायद हम इसे और बढ़ा सकें । यह एक बात है जो मैं आपके सम्मुख रखना चाहता था ।

ग्रामीण विकास के कुछ मुद्दे जो यहां रखे गए हैं, जिन पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है और जिन पर मुख्यमंत्रियों का ध्यान आकृष्ट करना जरूरी है, यह मंत्रियों और अधिकारियों के ध्यान देने की नहीं, स्वयं मुख्यमंत्रियों के ध्यान की बात

है । अब यह सच है कि राज्य में जब तक मुख्यमंत्री किसी विशेष गतिविधि की ओर स्वयं ध्यान नहीं देता, वो काम हो तो जाता है, मगर वैसे नहीं जैसे उसे होना चाहिए । यह सभी का अनुभव है । यही वजह है कि हम बार-बार आपको दिल्ली आने की जहमत दे रहे हैं और इसीलिए आज एक दिन का जो समय आपके पास है, उसे हम आपसे मुखातिब होकर व्यर्थ नहीं करना चाहते । दरअसल, इसे इसके बिल्कुल विपरीत होना चाहिए और हम आपको सुनना चाहेंगे कि आप सब मिलकर बैठें और हमें बताएं कि आप इन समस्याओं से कैसे निपटने वाले हैं ।

यदि भूमि वितरित नहीं की गई है, मेरे दोहराने से कि भूमि वितरित नहीं की गई है, तो इससे सुधार नहीं होगा । भूमि क्यों नहीं वितरित की गई । कानूनी प्रक्रिया इतनी लंबी क्यों है ? इससे क्यों नहीं निपटा जा रहा है ? यदि यह मेरा अपना ही मामला होता, मेरा व्यक्तिगत मामला, तो मैं यह सुनिश्चित करने के लिए कि मेरे मामले में जल्दी से जल्दी निर्णय दिया जाए, ऊपर से नीचे तक भागता । ऐसा क्यों है कि राज्य सरकारें तथा केन्द्र सरकार इन मामलों को अपने व्यक्तिगत मामले नहीं मानती ? अंततः बात यही ठहरती है । हमें इन मामलों को गम्भीरता से लेना होगा । ऐसे एक जैसे कई मामले इकट्ठे होंगे । यदि एक मुद्दे पर निर्णय हो जाए तो उसके आधार पर एक हजार मामले सुलझ जाएंगे । हम यह क्यों नहीं देख सकते कि न्यायालय द्वारा एक बिंदु को अच्छी तरह जांचा जाए, समय रहते, ताकि न्यायालयों में लटके हजारों मामले निपट जाएं ? यह ऐसा नहीं है कि एक लाख, नौ लाख मामले अथवा पांच लाख मामले, सब अलग हैं । ऐसा बिल्कुल नहीं है । ऐसे भी मामले हैं जिनमें एक अकेला मुद्दा है । 50,000 मामलों या 20,000 मामलों के बीच एक ही मुद्दा । इसलिए, यह संभव होना चाहिए । मैं इस बारे में काफी आश्वस्त हूं और मुझे उम्मीद है कि इस मुद्दे से निपटने के लिए आप क्या करने जा रहे हैं । इस बात पर विचार-विमर्श से आप किसी नतीजे पर पहुंचेंगे ।

भूमि देना ही केवल महत्वपूर्ण नहीं है । यह जानना अधिक महत्वपूर्ण है कि उस भूमि का क्या हुआ, उस भूमि को पाने वाले का क्या हुआ ? क्या उसने इसे बेच दिया है ? या क्या वह अभी तक इससे लाभ उठा रहा है, भूमि पर रह रहा है ? अब, यह भी काफी महत्वपूर्ण है । भूमि वितरण तो केवल पहला कदम है । लेकिन इससे एक कार्यक्रम स्वतः शुरू हो जाता है, दूसरा कदम, तीसरा कदम, चौथा कदम, यहां तक कि सरकार द्वारा भूमि परिसीमन अथवा अन्य नियमों के अंतर्गत उसे दी गई भूमि पाने से वह समाज की व्यवहार्य इकाई बन जाए । यही वह चीज है जिसे ठीक तरह से नहीं किया गया है । पिछले चालीस वर्षों से हम भूमि वितरित करते आ रहे हैं, यह या तो सरकारी भूमि है या वनचराई भूमि अथवा कोई अन्य भूमि और अब परिसीमन की भूमि । लेकिन उन व्यक्तियों का क्या हुआ जिन्हें ये जमीनें दी गई थी ? हम वास्तव में इसमें नहीं गए हैं ।

अब समय आ गया है कि हम सरकारी भूमि पाने वालों की स्थितियों का विशेषज्ञों से गहन अध्ययन कराएं तथा उनसे प्राप्त जानकारी के आधार पर यह देखें कि अब तक जो कुछ हुआ, उपयोगी भी रहा या फिर यह लोगों से बातचीत करने का सिर्फ एक मुद्दा रहा, लोगों को बताने का रहा, बड़े-बड़े दावे करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहा । इसलिए इन्हीं सब चीजों पर मैं चाहता हूं कि मुख्यमंत्री ध्यान दें ।

कुछ पेयजल के बारे में । यह सच है कि कई गांवों, लाखों गांवों को पेयजल उपलब्ध कराया गया है, लेकिन समस्याग्रस्त गांव अभी भी बचे हैं । वे कहते हैं कि ऐसे 3000, 4000 या 5000 गांव हैं, लेकिन जब जल स्तर नीचे चला जाता है तो समस्याग्रस्त गांवों की संख्या भी बढ़ जाती है क्योंकि समस्या बढ़ जाती है । इसलिए, इसे एक नियमित कार्यक्रम के रूप में लेना है, एक बार के कार्यक्रम के रूप में नहीं । यह एक निष्कर्ष हमें निकालना है कि गांवों को पेयजल देना एक बार का कार्यक्रम नहीं है । आप सिर्फ जल देकर एक कुंआ खोदकर अथवा एक नल देकर इसे भुला नहीं सकते । इस मामले में ऐसा नहीं होने वाला है । वो कुछ ऐसा होगा, जो हर साल हर महीने बार-बार करना होगा, ताकि पानी की आपूर्ति में कभी भी बाधा न पड़े । यह एक नया मुद्दा है जो हमारे सारे विचार-विमर्श से उभर कर सामने आया है, और यही वो मुद्दा है जिस पर हमें जोर देना है, विचार करना है, क्योंकि यह नया मुद्दा है, आपको यह देखना है कि इसके बारे में क्या किए जाने की आवश्यकता है ।

नहर के पानी के बारे में भी कुछ कहा गया है । हमारे पास डेल्टा क्षेत्र के कुछ राज्यों का नहर के पेय जल का अनुभव है । वो बहुत अच्छा नहीं है । उसे पीने के लिए देने से पहले काफी परिष्कृत करना पड़ता है । लोग नहरों के पानी को धोने के काम में लाते हैं, वो नहरों में ही नहाते हैं, मवेशियों को नहलाते हैं, सब कुछ धोते हैं । नहरों का पानी स्वास्थ्यकर नहीं होता और इसे लोगों को देने से पहले काफी साफ करना होता है । चाहे यह राजस्थान नहर हो या यह डेल्टा क्षेत्र की नहर हो जहां यह बहुत उथली होती है, आप पानी निकालते हैं और

उससे सैंकड़ों तरह के काम करते हैं। इस पानी के साथ बहुत सी बीमारियां लोगों तक पहुंचती हैं और गांवों में बहुत सी बीमारियों का स्रोत इस नहर के पानी में खोजा जा सकता है। तो यह कहना इतना आसान नहीं है कि आप नहर का पानी क्यों नहीं इस्तेमाल करते। नहर के पानी को विशेष तरीके से साफ करना होता है और यदि आप नहर के साथ-साथ हर गांव में यह काम करने लगे तो आपको इस समस्या की विकरालता का भान होगा। इसलिए, नहर के पानी को घरेलू इस्तेमाल के लिए, पीने के लिए देने की सिफारिश करते हुए हमें पूरी सावधानी बरतनी होगी। यदि इसके अलावा और किसी तरह का पानी उपलब्ध न हो, तब तो इसे प्रयोग में लेना ही होगा। मगर इसे इस्तेमाल करते हुए अन्य सभी सावधानियां बरतनी होंगी।

नौकरियों के बारे में, ग्रामीण शिल्पकारों को बेहतर औजार उपलब्ध कराने के बारे में कुछ किया गया है और इन सभी बातों पर हम बल देते रहे हैं और मैं कुछ हद तक यह दावा कर सकता हूं कि पिछले एक वर्ष के दौरान इस ओर कुछ ध्यान दिया गया है। ग्रामीण रोजगार योजना विशेषकर महाराष्ट्र की रोजगार गारन्टी योजना के बारे में हम काफी लम्बे समय से बातचीत कर रहे हैं। मेरे विचार में हमें इस बारे में सोचना होगा कि क्या हम इस महाराष्ट्र के रोजगार गारन्टी कार्यक्रम की कुछ मुख्य बातें लाभकारी रूप से अन्य राज्यों में लागू कर सकते हैं और इसी बात पर हमें किसी समय अंतिम रूप से निर्णय लेना होगा।

मजदूरी के लिए एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान जाने वाले श्रमिकों के दो वर्ग हैं, एक इस प्रकार के श्रमिक हैं जो अपने क्षेत्रों में रोजगार के अवसर तथा कोई काम न उपलब्ध होने के कारण दूसरे स्थानों को चले जाते हैं। एक अन्य वर्ग है कुशल श्रमिकों का। यह है आन्ध्र प्रदेश में महबूब नगर के "पलामुर" श्रमिक। हम इन श्रमिकों के बारे में कुछ-कुछ जानते हैं। यह बाहर केवल इसलिये नहीं जाते कि इन्हें अपने क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध नहीं हैं। यह कुछ सीमा तक आंशिक रूप से सच हो सकता लेकिन सच्ची बात यह है कि यह अपने काम के विशेषज्ञ होते हैं। अधिकतर पलामुर श्रमिक केरल से आते हैं। अगर आपको पुल का निर्माण करना है तो गंगा अथवा ब्रह्मपुत्र जैसी नदियों में बुनियाद रखनी हो तो मुझे विश्वास है कि इस काम के लिए पानी के नीचे काम करने वाले अधिकांश गोताखोर केरल से ही होंगे। केरल में जहां बड़े-बड़े बांधों, मिट्टी के बांधों का निर्माण करना होता है वहां अधिकांश कार्य महबूब नगर से आए "पलामुर" के इन श्रमिकों के द्वारा किया जाता है। वे विशेषज्ञता प्राप्त श्रमिक हैं। हो सकता है कि कुछ श्रमिक पीढ़ी दर पीढ़ी इस धन्धे में कार्यरत हों, वे अच्छे खाते-पीते हैं, वे वास्तविकता में बेरोजगार नहीं हैं। उन्हें हर जगह रोजगार प्राप्त है और वे इस काम के लिए हर स्थान पर जाते हैं। इस प्रकार के हैं ये श्रमिक। अगर आप उनके गांवों में जाएं तो आपको वहां बूढ़ों के सिवाए और कोई नहीं मिलेगा क्योंकि सभी काम करने योग्य व्यक्ति बाहर अपने काम पर गए हुए हैं। लेकिन कठिन क्षेत्रों में जहां सूखे की स्थिति है और कोई काम नहीं होता वहां से श्रमिक तीन चार महीने के लिए चले जाते हैं और जहां भी काम होता है करते हैं और फिर लौट आते हैं। इस प्रकार के श्रमिकों का ध्यान रखना है जो काम के लिए एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थानों पर चले जाते हैं।

अब यही विभिन्न प्रकार के श्रमिक वर्ग हैं जिनके बारे में हमें सोचना है।

अब मैं आपका ज्यादा समय नहीं लूंगा क्योंकि जिन बातों पर हमें विचार करना है वे सभी आपके सामने रख दी गई हैं। मैं दोपहर बाद फिर आपके विचार-विमर्श में शामिल होने की कोशिश करूंगा। मेरे विचार से उद्घाटन समारोह के लिए कम से कम समय लिया जाना चाहिए जिससे कि विचार विमर्श के लिए अधिक समय मिल सके। मुख्यमंत्रियों का समय बड़ा कीमती होता है। वास्तव में बिहार के मुख्यमंत्री इस बात से बड़े अप्रसन्न थे कि वह दिल्ली नहीं आ सके। कल रात और आज प्रातः उन्होंने मुझे फोन पर बताया कि उनके एक जिले में अचानक कुछ ऐसा हो गया है जहां उनकी मौजूदगी अत्यंत आवश्यक है। मेरा तात्पर्य है कि मुख्यमंत्रियों का जीवन इस प्रकार है। हम यह सब जानते हैं। हम उनके समय के साथ इस प्रकार खिलवाड़ नहीं कर सकते।

मैं चाहता हूं कि मुख्यमंत्री इन सभी जटिल समस्याओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें। कृपया आप हमें बतायें कि हम किस प्रकार आपकी सहायता कर सकते हैं क्योंकि यह काम मुख्य रूप से राज्य सरकारों का है। आप जिस तरीके से हमारी सहायता चाहते हैं हम करेंगे, हम आपकी सहायता के लिए हैं। अब प्रणव जी आपको कुछ बताएंगे कि योजना आयोग इस बारे में क्या सोचता है तब आप उनके साथ विचार-विमर्श कर सकते हैं।

**साभार**
**पत्र सूचना कार्यालय**

(9 अक्तूबर 1992 को मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री के भाषण का अंश)

# सूखा सोख लेता है सुख चैन को

□ वेद प्रकाश अरोड़ा □

विश्व में अन्य देशों की ही तरह भारत में प्राचीन काल से ही सूखा पड़ता रहा है और बाढ़ें आती रही है। सच तो यह है कि सूखे और बाढ़ की त्रासदी सुदूर अतीत में जीवन के अंगड़ाई लेने और आंखें खोलने से भी कहीं पहले से चली आ रही है। हां तब बाढ़ों, सूखे, भूकम्पों, भू-स्खलनों, आकाशीय पिंडों की टूटन, ज्वार-भाटाओं, समुद्री तूफानों, बवंडरों, चक्रवातों और ज्वालामुखियों के विस्फोट के समाचार देने वाले प्राणियों का जन्म ही इस भूलोक में नहीं हुआ था या वे सभ्यता के उन्मेषकाल से गुजर रहे थे। लेकिन मनु महाराज की संतानों के जन्म लेने के बाद वे सभ्यता का परिधान ओढ़े जैसे जैसे विस्तार लेती चली गई, एक देश से दूसरे देश में तथा एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप में पसरती चली गई, उन्हें जीवन के दुखद-सुखद, खट्टे-मीठे, कसैले और खुशगवार सभी तरह के अनुभवों के चक्र से गुजरना पड़ा तभी से उन्हें प्रकृति के सुहावने और डरावने दोनों रूप रंगों के अनुकूल जीवन जीना और ढालना पड़ा। तभी से उन्होने पाया कि अकाल और बाढ़ की कहानी एक अंतहीन एवं त्रैकालिक कहानी है। पहले सूचना माध्यमों के अभाव या कमजोर रहने के कारण प्रकृति के प्रकोपों की व्यापकता और भीषणता का अन्दाजा नहीं लग पाता था लेकिन अब आये दिन समाचार पत्रों और सूचना माध्यमों से प्रकृति के जनसंहारी कृत्यों की जानकारी मिलती रहती है। हाल ही में न केवल मिस्र में भूकंप ने सैकड़ों व्यक्तियों को मौत की नींद सुला दिया। अफ्रीकी देश सोमालिया में भयंकर सूखे से पिछले 18 महीनों में तीन लाख व्यक्ति मौत के शिकार हो चुके हैं, दस लाख मृत्यु के कगार पर खड़े हैं और इससे भी अधिक जीवन की बची-खुची सांसों को संजोए रखने के लिए अन्य देशों में शरण के लिए जा चुके हैं। इधर अपने देश में सूखे के प्रकोप के कारण सारे बिहार राज्य को सूखापीड़ित क्षेत्र घोषित कर दिया गया है तो केरल में लौटते मानसून की वर्षा ने तबाही मचा दी है और प्रलयकारी बाढ़ ने सैकड़ों मकानों, पुलों और सड़कों को नष्ट कर दिया है। असल में सूखे और बाढ़ इन दो भयंकर प्राकृतिक संकटों की पुनरावृत्ति यहां वहां लगभग हर वर्ष होती है। कभी भयावह बाढ़ के पानी से तबाही देखने को मिलती है तो कभी अकाल का क्रंदन सुनाई पड़ता है। कुछ स्थानों पर बादल फटकर अचानक बाढ़ ला देते हैं, परिवहन संचार और यातायात के सभी साधनों को अस्त-व्यस्त कर देते हैं, तो कुछ स्थान आकाश से बूंदों के बरसने के लिए तरसते तड़पते रह जाते हैं। इंद्र देवता के रंग-ढंग भी निराले हैं। जो स्थान कुछ समय पहले तक पानी की बूंदों के लिए हाहाकार कर रहा था वहीं मूसलाधार वर्षा से त्रस्त हो उठता है और इंद्र देवता से बस करो, बस करो की गुहार करता है। दैवी विचित्रता की अबूझ कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। कभी देखने में आता है कि एक ही वक्त एक क्षेत्र के कुछ हिस्से में लोग सूखे और चिलचिलाती धूप से परेशान हैं तो उससे कुछ दूरी पर लोग बाढ़ के पानी से घिरे होते हैं। असम की पहाड़ियों में पांच सौ इंच तक वर्षा होती है जबकि राजस्थान के थार रेगिस्तान की धूल भरी और गरम हवाओं में सब कुछ झुलस जाता है। यही कारण है राजस्थान के कई भाग वर्षा के बादलों की तरफ टकटकी लगाये रहते हैं और वे वर्षा की एक एक बूंद की आतुरताभरी निगाहों से प्रतीक्षा करते रहते हैं।

पश्चिम बंगाल का पुरुलिया जिला अक्सर सूखे से पीड़ित रहता है। लेकिन इस बार वहां जो भयंकर बाढ़ आई है, वह पिछले सौ वर्षों के इतिहास में कभी देखने सुनने को मिली। ऐसे समय जब उत्तर भारत में मानसून समाप्त होने जा रहा था, जम्मू कश्मीर में अचानक जोर की वर्षा हुई और विनाशकारी बाढ़ आ गई। पहाड़ों से बड़ी-बड़ी चट्टानों ने टूट कर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। लगभग 300 से अधिक व्यक्तियों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। पहाड़ों से बड़े-बड़े पत्थरों के गिरने से विनाश लीला ही नहीं हुई राष्ट्रीय राजमार्ग भी कई दिन अवरुद्ध रहा।

**समस्या एक पहलू दो**

वास्तव में विभिन्न क्षेत्रों में प्राकृतिक असमानता के बावजूद अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों मूल रूप से पानी की समस्या से जुड़े हैं। सूखा तब पड़ता है जब इंद्र देवता रूठ कर पानी के छींटें ही न डालें और बाढ़

का प्रकोप तब होता है जब इंद्रदेव आकाशीय खिड़की झरना बहा दें। अकाल में भाग्य गरीब की हस्त-रेखाओं की तरह कटा-फटा रहता है तो बाढ़ में पानी अमीर के धन की तरह सम्हाले सम्हल नहीं पाता। हालांकि दोनों ही स्थितियों में खाद्य पदार्थों के अभाव का सामना करना पड़ता है तो भी दोनों से उत्पन्न माहौल, इनकी समस्याएं, परिणाम और समाधान सब अलग अलग होते हैं। गांवों में इन समस्याओं की विकरालता शहरों के मुकाबले कहीं अधिक होती है। 1987 के अकाल के दौरान दिल्ली में वर्षा न होने पर सौ वर्षों का रिकार्ड टूटा तो था, लेकिन राजधानी होने के नाते यहां चीजों की कमी महसूस नहीं होने दी गई। यह और बात है कि तब महंगाई कुलाचे भरती आगे ही आगे दौड़ने लगी थी। लेकिन इस अकाल का दुष्प्रभाव गांवों में और दूरदराज के क्षेत्रों में बहुत अधिक महसूस किया गया। तब देश के कुल 400 जिलों में से केवल 145 में ही सामान्य वर्षा हुई, 110 जिलों में सामान्य से कम और 152 जिलों में तो नाममात्र की वर्षा हुई या बिल्कुल ही नहीं हुई। तब लगभग 50 करोड़ व्यक्ति सूखे या अकाल से पीड़ित हुए थे। 1984-85 में सात राज्यों में 1985-86 में 10 राज्यों में और 1986-87 में 17 राज्यों में सूखा पड़ा था। 1987 के भयंकर सूखे ने गांवों में हाहाकार मचा दिया था। लोग दाने-दाने के लिए तरसते रहे। हलक गीला करने के लिए कोसों दूर जाकर पानी लाना पड़ता था। कुएं सूख गये या फिर उनका पानी बहुत नीचे चला गया। खेतों में सिंचाई के लिए पानी न मिलने से किसान अपनी नियति को कोसते रहे। तब गांवों से शहरों की तरफ पलायन बढ़ गया। जगह-जगह मवेशी मर गये या वे चरागाहों की ओर चले गये, रास्ते में भी अनेक पशुओं ने दम तोड़ दिया। सूखे का सबसे अधिक प्रभाव कृषि और उद्योगों पर पड़ा। तब अकाल ने कृषि के मामले में हमारी आत्मनिर्भरता को गंभीर चुनौती दी। सूखे का सबसे अधिक प्रभाव चावल और मोटे अनाजों के उत्पादन पर पड़ा। धान की 32 प्रतिशत, दालों की 33 प्रतिशत और मूंगफली की 65 प्रतिशत फसल नष्ट हो गई। उद्योगों विशेष रूप से कृषि आधारित उद्योगों पर सूखे का भारी असर पड़ा। कुछ उद्योगों जैसे रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खेती के काम आने वाले उपकरणों तथा ट्रैक्टरों के कारखानों की मशीनें और चक्के सुस्त पड़ गये। गोदामों से इन्हें उठाने वाले ही नहीं रहे। पानी न होने से बिजली कैसे तैयार होती और बिजली न होने से कारखाने कैसे चलते। वैसे भी जन साधारण और ग्रामीणों की खरीद-शक्ति कम हो जाने पर कारखानों में बनी चीजों की मांग और खपत कम हो गई। कृषिजन्य पदार्थों जैसे कपास, तिलहनों, दलहनों, गन्ना और नारियल की पैदावार कम होने से इन पर आधारित उद्योग बंद होने या सिकुड़ने तथा मजदूरों के बेरोजगार होने का डर बड़ा आकार लेता चला गया। सूखे के दौर में सबसे अधिक मुसीबत असंगठित और दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूरों पर आ पड़ती है। इनमें खेत मजदूर, बेलदार, राज-मिस्तरी, पल्लेदार, ठेला मजदूर सभी शामिल हैं। एक तो उन्हें हर रोज रोजगार मिलना कठिन होता है, दूसरे रोजमर्रा की चीजों की तंगी और उनकी बढ़ती कीमतें उनकी कमर तोड़ कर रख देती है। उत्पादों में कमी से आयात बढ़ जाता है और व्यापार में प्रतिकूलता उग्र रूप ले लेती है। खेतों और कल कारखानों में काम न रहने पर छंटनी और तालाबंदी का क्रम शुरू हो जाता है। इससे एक ओर विकास दर पिछड़ने लगती है तथा दूसरी ओर बेरोजगारी सुरसा के मुंह की तरह बढ़ने लगती है।

**उपाय**

यहां प्रश्न उठता है कि हम इन दैवी संकटों से कब तक जूझते-मरते रहेंगे, कब तक अरबों रुपये पानी की तरह बहाते रहेंगे, कब तक जनधन और पशुधन की बरबादी सहते रहेंगे। अगर मनुष्य पहाड़ों को काट-तराश कर बड़े-बड़े शहर बना, बसा सकता है, ब्रिटेन और फ्रांस को परस्पर जोड़ने के लिए समुद्र के अंदर सुरंग बिछा सकता है, उपग्रहों के सहारे धरती का अन्य ग्रहों से सीधा रिश्ता नाता जोड़ सकता है तो क्या उन्नत वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी एवं स्पूतनिक युग में वह अकाल और बाढ़ पर काबू नहीं पा सकता। अगर वह उन पर पूरा नहीं तो काफी हद तक नियंत्रण तो कर ही सकता है या फिर उनके प्रकोप को कम कर सकता है। लेकिन इसका कोई एक अचूक नुस्खा नहीं है। इसके लिए कई मोर्चों पर एक साथ काम करना होता है तथा बेतहाशा रुपये खर्च करने पड़ते हैं। इसीलिए आपात स्थितियों से निपटने के लिए अब प्रत्येक वर्ष के बजट में अलग से प्रावधान किया जाने लगा है। बंजर भूमि के विकास के लिए एक पृथक मंत्रालय गठित किया गया है। 13 राज्यों में 92 जिलों के 615 खण्ड सूखे की आशंका वाले क्षेत्र घोषित किए गए हैं। 750 मिलीमीटर से कम वर्षा से लेकर 1125 मिलीमीटर और 1650 मिलीमीटर तक वर्षा के आधार पर इन क्षेत्रों को तीन वर्गों में बांटकर तदानुसार कार्यक्रम बनाये गये हैं। पर्यावरण दूषित न हो, उसके तापमान

में अनपेक्षित वृद्धि न हो तथा ऋतु चक्र में कोई व्यवधान न हो इसके लिए जंगलों की कटाई पर रोक लगा दी गई है तथा भूमि के एक तिहाई भाग को हरा भरा रखने के प्रयास किए गए हैं। कारखानों से बाहर निकलने वाले धुएं पर भी नियंत्रण के उपायों में निरंतर वृद्धि की जा रही है। शत प्रतिशत केन्द्र परिचालित जवाहर रोजगार परियोजना देहाती इलाकों के गरीबों को रोजगार देने और गांवों में स्थाई परिसम्पदाएं तैयार करने का काम कर रही है। मजदूरी के एक अंग के रूप में अनाज देने का काम सीधे गांव सभाओं और गांव पंचायतों को सौंपा गया है। इस सबके बावजूद अगर कहीं सूखा पड़ जाय, तो कई बार मानव के बस की बात नहीं होती, तो सूखे पर काबू पाने के लिए कई तात्कालिक, अल्पकाल्कि और दीर्घकालिक कार्यक्रम हाथ में लिये जाते हैं। विभिन्न कार्यक्रमों में पेयजल की सप्लाई आम उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धता और उनके मूल्यों पर अंकुश तथा पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। सूखे के दौरान गांवों में तालाब और बावड़ियां सूख जाती हैं तथा कुओं में भी पानी या तो खत्म हो जाता है या बहुत नीचे चला जाता है। पानी की इस समस्या के समाधान के लिए जमीन में गहरी बोरिंग की जाती है तथा इसके लिए रिंग-मशीनें दी जाती हैं तथा नये बर्मे और नलकूप लगाये जाते हैं। उचित दर की दुकानों का जाल बिछाकर दूरदराज के तथा अलग पड़े गांवों में भी आम जरूरत की चीजें लोगों को उचित मात्रा और सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराई जाती है। अकाल की भीषणता कम करने के लिए तत्काल कई निर्माण और राहत कार्य भी शुरू किये जाते हैं। कहीं टूटी सड़कों की मरम्मत की जाती है तो कहीं नई नई सड़कें बनवाई जाती हैं। कुएं, तालाब, और जोहड़ खोदे जाते हैं। छोटी नहरों, नालियों और रजवाहों का निर्माण कराया जाता है। गांवों को शहरों से जोड़ने वाली संपर्क सड़कें बनाकर गांवों में खाने-पीने की चीजें सुगमता से उपलब्ध कराई जाती हैं। अकालग्रस्त क्षेत्रों में विभिन्न निर्माण कार्यों पर स्थानीय व्यक्ति दैनिक या साप्ताहिक रोजगार पर लगाए जाते हैं। इसके जरिये एक तीर से कई निशाने साधे जाते हैं। रोजगार मिलने पर भूखों मरने का सवाल ही नहीं उठता। जेब में पैसे हों तो उदर पूर्ति के लिए खाने-पीने की चीजें खरीदी जा सकती हैं। अब तो राज्य सरकारें श्रमिकों को दिहाड़ी के वेतन का कुछ हिस्सा नकद और कुछ जिन्सों जैसे गेहूँ और चावल के रूप में देती हैं। गांवों में ठोस निर्माण कार्य करने से अकाल की विकरालता कम ही नहीं होती, गांवों का चेहरा मोहरा भी निखरने लगता है।

**कुछ अप्रिय तथ्य**

लेकिन राहत कार्यों की समीक्षा के लिए समय-समय पर गठित समितियों एवं जांच दलों में कुछ अप्रिय तथ्यों एवं पीड़ाकारी बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जिनका निवारण होने पर ही सरकार के विभिन्न विकास कार्यों का लाभ सही व्यक्तियों को, सही समय और सही स्थान पर मिल सकेगा। देखा गया है कि कुछ लोग दैवी विपत्तियों में भी गरीबों के भविष्य से खिलवाड़ करने से बाज नहीं आते। वे दूसरों की आग पर अपनी रोटी सेंकते हैं और दैवी प्रकोपों में गरीबों और गांवों की सहायता करने की बजाय अपनी तिजोरियां भरने का शर्मनाक खेल खेलने से नहीं चूकते। कुछ व्यापारी जमाखोरी के सामाजिक अपराध का सहारा लेकर धन्नासेठ बनने की उद्दंडता दिखाते हैं। उनके लिए मानव और उसके श्रेष्ठ मूल्यों का कोई महत्व नहीं। ये सामाजिक कसाई गरीबों की आहों में अपनी अमीरी के सपने साकार होते देखते हैं। वे वस्तुओं के मूल्य बढ़ा देते हैं। अगर गरीब किसान, खेत मजदूर या अन्य श्रमिक पहले सूखे से पीड़ित थे तो बाद में कुछ व्यापारियों के मुनाफे की मार से कराह उठते हैं। इस दोहरी मार से उनका कचूमर निकल जाता है। कहीं कहीं तो अकाल, सूखा और बाढ़, राजनीतिज्ञों, अधिकारियों और उनके दलालों के धन के दोहन का स्रोत बन जाते हैं। इस संदर्भ में एक यह बात भी देखने में आई है कि अकाल और बाढ़ की स्थिति में राजनीतिज्ञ, सामाजिक कार्यकर्त्ता, समाज सेवी संगठन, जन प्रतिनिधि और सरकारी अधिकारी सभी इस या उस स्वार्थ के पूरा करने के लिए सक्रिय हो उठते हैं। इनमें से कुछ तो सस्ती वाहवाही लूटने या अपना नाम चमकाने के लिए या अपना वोट बैंक कायम रखने के लिए सतही तौर पर काम करते नजर आते हैं। इन विपत्तियों का प्रकोप कुछ कम हुआ नहीं कि वे लम्बी तान कर सो जाते हैं, सोते भी ऐसे हैं जैसे कोई दुखद घटना घटी ही नहीं। विपदाओं में वैभव का ताना बाना बुनने वाला एक और ऐसा वर्ग है जो समाज और सरकार को लूटने में संकोच नहीं करता। यह वर्ग है ठेकेदारों का। इनमें से कुछ ठेकेदार सरकार से निर्माण कार्यों के लिए रुपये पैसे तो पूरे-के-पूरे वसूल कर लेते हैं लेकिन सड़कों, पुलियों और तालाबों आदि का घटिया मसाले से निर्माण करते हैं। परिणाम यह होता है कि कुछ समय बाद यह मसाला इतना उखड़ जाता है और

इन पर धूल इतनी चढ़ जाती है कि पुलिया, सड़कें और तालाब सभी नदारद हो जाते हैं। कई ऐसे भी उदाहरण सामने आये हैं कि न तो सड़क बनी, न पुल बना और न तालाब, फिर भी इन्हें कागजों पर पूरा कर दिखा कर सरकार से सारी रकम वसूल कर ली गयी है। इस तरह विपत्तियों के नाम पर प्रति वर्ष खर्च होने वाले अरबों रुपये का कुछ ही भाग सही माने में पीड़ित क्षेत्रों और पीड़ित व्यक्तियों को मिल पाता है।

**स्थाई समाधान के उपाय**

देश में लगभग 3 अरब एकड़ फुट वर्षा होती है। अगर इस पानी को पूरे देश में बराबर मात्रा में फैला दिया जाए तो सभी जगह लगभग 45 इंच पानी की मोटी परत दिखाई देगी। जाहिर है इससे पूरे देश की भूमि को आसानी से सींचा जा सकता है तथा घर-घर पानी मिल सकता है। तो भी आज के आधुनिक युग में अब भी हजारों गांवों की, समस्या-प्रधान गांवों में गणना की जाती है तथा हमारी कुल कृषि भूमि के मुश्किल से चौथे हिस्से में ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। बाकी तीन चौथाई भाग वर्षा के पानी पर निर्भर रहता है। इसीलिए जब वर्षा नहीं होती तो सभी तरह हाहाकार मच जाता है। हमें साल भर वर्षा से प्राप्त इस अरबों एकड़ फुट पानी के उपयोग के लिए जगह-जगह छोटे-बड़े बांध बनाने होंगे। अभी मानसून से मिले जल का 81 प्रतिशत यूं ही समुद्र में जा गिरता है। इसी तरह हमारे यहां भूमिगत जल भंडार की वार्षिक क्षमता 18 करोड़ एकड़ फुट है। इसका भी मुश्किल से एक चौथाई भाग ही उपयोग में लाया जाता है। बाहर की विशाल जलराशि को राजस्थान नहर की तरह और धरती के अंदर छिपे पानी को नलकूपों आदि के ज़रिए गांव-गांव तक ले जाने का जुगाड़ कर लिया जाए तो देश हमेशा के लिए सूखे और अकाल के अभिशाप से छुटकारा पा सकता है। उत्तर और दक्षिण की नदियों को या फिर आरंभ में कम से कम अलग-अलग क्षेत्रों की नदियों को आपस में जोड़ कर बाढ़ और सूखे-दोनों ही समस्याओं का एक बारगी समाधान किया जा सकता है। सूखा पड़ने का एक अन्य प्रमुख कारण जंगलों की कटाई है। जंगल कभी जलाऊ लकड़ी के लिए, कभी उद्योग लगाने के लिए तो कभी डाकुओं के छिपने के ठिकानों का सफाया करने के लिए काटे जाते हैं। जंगलों के कटने से मिट्टी की पकड़ ढीली हो जाती है और वह कट कट कर नदियों में जमा हो जाती है जिससे उनका तल ऊंचा होकर बाढ़ का कारण बन जाता है। जंगल और पेड़ पौधे कटने से बादलों का रुकना और पानी बरसना भी बंद हो जाता है। इससे सूखे और अकाल की विभीषिका पैदा हो जाती है। इधर उत्तर प्रदेश, असम, गुजरात, उड़ीसा, नागालैंड और अरुणाचल प्रदेश के जंगल क्षेत्र में कुछ कमी हुई है। इस वर्ष जून में ब्राजील की राजधानी रियो डि जनेरो में दूसरे अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन और 20 वर्ष पहले स्टाकहोम में पहले अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन में यह बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई कि मनुष्य की हरकतों ने हवा, पानी, मिट्टी और जंगलों को बरबाद किया है। तरह-तरह के प्रदूषक तत्वों के मिलने से हवा सांस लेने लायक नहीं रही, पानी पीने लायक नहीं रहा, मिट्टी का बुरी तरह कटाव हुआ, जमीन बंजर बन गई और रेगिस्तान फैल गया। सन् 1950 तक विश्व के आधे जंगल चूल्हों और भट्ठियों की भेंट चढ़ चुके थे। ये जंगल चमचमाते फर्नीचर, इमारतों के दरवाजों और पैनलों में बदले जा चुके थे। प्रकृति को तहस-नहस करने का यह क्रम औद्योगिक क्रांति के बाद भयंकर तेजी से आगे बढ़ता चला गया है। मीथेन गैस और कार्बन डाई ऑक्साइड के वायुमंडल में अधिक मिलते जाने से ग्रीन हाउस प्रभाव बढ़ता जा रहा है, तथा हवा का औसत तापमान बढ़ता जा रहा है। इससे सूखे के क्षेत्र तथा तीव्रता दोनों में वृद्धि होनी लाजिमी है। उधर इन विषाक्त गैसों से पृथ्वी के कवच ओजोन परत में दरार अथवा छेद पड़ने और बढ़ने से पराबैंगनी विकिरण का अधिक क्षेत्र में फैलना और बरसना त्वचादाह से लेकर त्वचा कैंसर और मोतियाबिंद का कारण भी बन गया है। इसराइल और मिस्र रेगिस्तान को हरी पट्टी में बदल सकते और चीन अपनी कुछ उत्पाती नदियों के उफनते बहाव को नियंत्रित कर सकता है तो हम अकाल और बाढ़ों को प्राकृतिक आक्रोश कह कर अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकते। चीन जहां बड़े बड़े बांध बनाकर पानी को जमा कर लेता है और उसे वक्त जरूरत पर पीने के पानी तथा सिंचाई कार्यों के लिए प्रयुक्त करता है और उससे बिजली तैयार करता है, वहां उसने लगभग दस करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में जंगल लगाकर सूखे और अकाल को अलविदा कर दिया है। इससे प्रेरणा लेते हुए भारत में भी ईंधन की वैकल्पिक व्यवस्था करनी होगी। प्रत्येक वृक्ष काटने पर कम से कम चार नए पौधे लगाना और उनके संरक्षण को कानूनी अनिवार्यता देकर स्थिति को कठोरता से सम्हालना होगा। प्रत्येक वर्ष वन महोत्सव मनाया जाना इसी दिशा में एक प्रयास है लेकिन जब तक पेड़ रोपने के बाद उसकी सुरक्षा का पक्का प्रबंध न किया जाए, तब तक इस महोत्सव का पूरा लाभ देश

को नहीं मिल पायेगा । गांवों में पंचायतें और इस काम को मुस्तैदी से अपने हाथ में ले लें तो गांवों की उड़ती धूल और अंधड़ शांत हो जायेंगे तथा कटे-फटे खेत सोना उगलने लगेंगे । सात पंचवर्षीय योजनाओं और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 45 वर्षों में भी देश का सूखे के अभिशाप से मुक्त न होना तथा बाढ़ों को बांध न पाना यह जतलाता है कि कहीं न कहीं कोई खामी है, तथा दृढ़ संकल्प शक्ति का अभाव है ।

**268, सत्यनिकेतन, मोतीबाग,**
**नानकपुरा, नई दिल्ली-110 021**

# 1990-2000 प्राकृतिक आपदा दशक घोषित

संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) ने वर्ष 1990 से सन् 2000 तक की अवधि को प्राकृतिक आपदा में कमी लाने का अन्तर्राष्ट्रीय दशक घोषित किया है । भारत सरकार के कृषि व सहकारिता मंत्रालय ने अन्तर्राष्ट्रीय दिवस व सप्ताह मनाने के लिए एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया है । यह समिति सूखा, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव को कम करने के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करेगी ।

# प्राकृतिक विपदाएं : बचाव के उपाय

□ प्रदीप पंत □

जब कहीं कोई प्राकृतिक दुर्घटना होती है, तब कई लोगों के मुंह से बरबस निकल पड़ता है कि यह सब हमारे पापों का फल है । कुछ अन्य लोग कहते सुनाई देते हैं कि यह मनुष्य द्वारा प्रकृति के साथ की गई छेड़छाड़ का परिणाम है । यह सब बातें न जाने कितने युग-युगों से कही-सुनी जाती रही हैं और युग-युगों से ही दुनिया के तमाम देशों में आंधी, तूफान और चक्रवात जैसी प्राकृतिक विपदाएं आती रही हैं । बाढ़ और भूकम्प की खबरें सुनने को मिलती रही हैं । अक्सर बड़े-छोटे पैमाने पर भूस्खलन होते हैं, महामारियां फैलती हैं, जंगलों में आग लगती है, तेज लू या अति ठंड पड़ती है, अकाल और सूखा फैलता है, अति वृष्टि या अनावृष्टि होती है, इन तमाम प्राकृतिक विपदाओं से आज तक लाखों स्त्री-पुरुषों, बच्चों-बूढ़ों की जानें जा चुकी हैं । अरबों-खरबों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ है और कई बार तो यह नुकसान ऐसा और इतना अधिक हुआ है कि इसकी क्षतिपूर्ति भी नहीं हो पाती । कई बार प्राकृतिक आपदाओं से गांव के गांव पूरे नष्ट हो जाते हैं और विशाल जनसमूह देखते-देखते समाप्त हो जाते हैं ।

भारत प्राकृतिक विपदाओं के मामले में कतई अपवाद नहीं है । सच बात तो यह है कि हमारे देश के विशाल आकार प्रकार का होने और यहां साल भर मौसम की विविधता रहने के कारण प्राकृतिक विपदाएं किसी न किसी क्षेत्र में अक्सर आती ही रहती हैं । कभी हम बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश की खबरें सुनते हैं तो कभी असम, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि में बाढ़ से तबाही मचती है । कई बार पहाड़ों, चट्टानों के धसकने से जान माल का भारी नुकसान होता है तो कभी भूकम्प से धरती हिल उठती है । उत्तर काशी में आए भूकम्प की भयानक दुर्घटना को भुलाया नहीं जा सकता । दूसरे छोर पर समुद्र तटीय क्षेत्रों में अक्सर तूफान आते रहते हैं । इन तूफानों ने अब तक न जाने कितने मछुआरों की जान ली और उनके परिवारों को तबाह कर दिया । मछुआरों के बारे में तो यह कहावत ही मशहूर हो गई है कि वे समुद्र किनारे जन्म लेते हैं, समुद्र की लहरों में उनका जीवन बीतता है और उसी में स्वाहा भी हो जाते हैं । इसी भांति जंगलों की आग से अब तक कई बार आदिवासियों की जमीन-जायदाद और जान का भारी नुकसान हो चुका है । आंधी, तूफान, चक्रवात और अतिवृष्टि ने भी कई बार बड़े पैमाने पर जानमाल को क्षति पहुंचाई है । इन सबसे जाने कितने मकान नष्ट हो गए और जाने कितने लोग मारे गए ।

आज के वैज्ञानिक युग में प्राकृतिक आपदाओं को रूढ़ अर्थ में हमारे पापों का फल तो नहीं माना जा सकता किन्तु कई बार इन विपदाओं का कारण प्रकृति के साथ मनुष्य की छेड़-छाड़ तो है ही । हम अपने स्वार्थों के लिए जंगल के जंगल तबाह करते चले जाते हैं, जिसके फलस्वरूप हराभरा क्षेत्र रेगिस्तान में बदल जाता है । नतीजा यह होता है कि जो हरे-भरे विशाल पेड़ आंधी-तूफान को रोकते हैं, उनके न रहने से आंधी तूफान हम पर हमला कर देते हैं । पहाड़ों में वृक्षों की मनमानी कटाई का दुष्परिणाम यह होता है कि अच्छी-भली पहाड़ियां और चट्टानें खिसक जाती हैं । इधर एक मत यह भी प्रकट किया जाने लगा है कि बड़े-बड़े बांध बनाने की वजह से धरती पर प्रतिकूल असर पड़ता है और परिणामस्वरूप भूकम्प आते हैं । उत्तर काशी में आए भूकम्प के लिए कई लोगों ने, जिनमें अनेक विशेषज्ञ भी शामिल हैं, टिहरी बांध की विशाल परियोजना को जिम्मेदार ठहराया है । यद्यपि यह आरोप विवादास्पद है किन्तु इसे मात्र आरोप मान कर एक दम से खारिज भी नहीं किया जा सकता ।

दूसरी ओर यह भी सच है कि ऐसी अनेक प्राकृतिक विपदाएं हैं जो हमारी छेड़-छाड़ की वजह से नहीं होती, वरन, प्रकृति में होने वाली किन्हीं असामान्य स्थितियों के कारण पैदा हो जाती हैं । उदाहरण के लिए समुद्री तूफान को लिया जा सकता है । समुद्र की सम्पदा का तो मनुष्य इस्तेमाल करता आया है । उसकी लहरों पर हमारे जहाज इधर-उधर आते जाते रहते हैं किन्तु इनके कारण कोई ऐसी स्थितियां पैदा हों जिनसे तूफान आ जाएं, ऐसा अभी तक देखने को नहीं मिला है ।

बहरहाल प्राकृतिक विपदाओं के कारण चाहे जो भी हों, किन्तु उन पर काबू पाया जा सकता है या कम से कम उनकी

विभीषिका को कम तो किया ही जा सकता है। यदि जंगलों की अनियंत्रित कटाई न हो तो आंधी-तूफान व चक्रवात कम आएंगे, भूस्खलन और बाढ़ आने की घटनायें कम होंगी फलस्वरूप सूखे और अकाल तथा महामारी फैलने की संभावनाएं भी कम हो जाएंगी।

पहले मनुष्य के पास प्राकृतिक विपदाओं को नियंत्रित करने के साधन या उनसे बचने के उपाय कम थे, किन्तु विज्ञान ने हमें ऐसी अनेक सुविधाएं दे दी हैं जिनसे हम प्रकृति के संभावित प्रकोपों पर नियंत्रण पा सकते हैं और आने वाले दिनों में होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव करके जान माल की रक्षा कर सकते हैं। इस दिशा में हाल के वर्षों में हमारे देश में काफी प्रगति हुई है और ऐसे अनेक वैज्ञानिक केन्द्र स्थापित किए गए हैं जो प्रकृति की घातक चुनौतियों का मुकाबला करने में हमारी मदद कर रहे हैं। इस उद्देश्य से अनेक अखिल भारतीय समन्वित परियोजनाएं चलाई गई हैं। इस संदर्भ में हम भूकम्प विज्ञान कार्यक्रम का उल्लेख कर सकते हैं जो छठी पंचवर्षीय योजना में शुरू किया गया और सातवीं योजना अवधि में भी जारी रखा गया। इस हेतु हिमालयी पट्टी में विभिन्न स्थानों पर भूकम्प केन्द्र और भूकम्प तंत्र की स्थापना का बुनियादी ढांचा तैयार कर लिया गया है। फलस्वरूप भारतीय वैज्ञानिकों को हाल के कुछेक भूकम्पों को रिकार्ड करने में सफलता प्राप्त हुई है। इससे हिमालय क्षेत्र की भूगतिविधियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी एकत्रित हो गयी है। आशा है कि अब यह पता लगाया जा सकेगा कि भूकम्पों का क्या कारण है, उनका पूर्वानुमान कैसे लगाया जाये और उनसे किस प्रकार निपटा जाये?

जिस प्रकार भूकम्पों से जान-माल की क्षति होती है उसी भांति हिमनदों (ग्लेशियरों) के पिघलने से नदियों में पानी बढ़ता है और कई बार बाढ़ भी आ सकती है। अतः हिमनदों के वैज्ञानिक पक्षों के अध्ययन के लिए 1986 में बहु संस्थागत और बहु विधायी समन्वित परियोजना आरंभ की गयी। इसके ठीक विपरीत 1987 में सूखे क्षेत्रों के अनुसंधान के लिए एक अन्य समन्वित कार्यक्रम आरंभ किया गया था। साथ ही मानसून का आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से अध्ययन करने का कार्यक्रम भी चलाया गया है। इसी भांति स्थानीय तूफानों के कारण, बचाव आदि के लिए एक अन्य परियोजना भी चलाई गई है। एक अन्य कार्यक्रम है–कटिबंधीय सागर और विश्व वातावरण कार्यक्रम। यह अन्तर्राष्ट्रीय परियोजना है। इसके जरिये आधुनिकतम उपकरणों के सहारे ज्वार भाटों आदि का पता लगाया जायेगा ताकि समुद्री तूफानों की समय पर एकदम सही-सही जानकारी मिल सके। जो अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रम हाल के वर्षों में चलाया गया है, वह है मौसम के पूर्वानुमान का, ताकि किसानों को अनुकूल, प्रतिकूल मौसम की जानकारी मिले और प्राकृतिक विपदाओं से खेती को होने वाले संभावित नुकसान से बचाया जा सके। इस उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय मध्यम अवधि मौसम पूर्वानुमान केन्द्र की स्थापना की गयी जिसके अंतर्गत सुपर कंप्यूटर सहित सभी आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था की गयी है। सच तो यह है कि स्थिति की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए 1975 से देश में एक सम्पूर्ण भारतीय मौसम विज्ञान विभाग की ही स्थापना कर दी गयी है। कहना न होगा कि मौसम का प्राकृतिक आपदाओं और कृषि उत्पादन से गहरा संबंध है और यदि मौसम की समय पर सही-सही जानकारी मिल जाती है तो हमारी बहुत सी समस्याएं सहज ही हल हो सकती हैं। इस दृष्टि से इस विभाग का बहुत महत्व है। इस विभाग के अंतर्गत देश में 14,000 से अधिक वेधशालाएं स्थापित की गयी हैं जो भांति-भांति के आंकड़े एकत्रित करती हैं, उनका अध्ययन करती हैं। मौसम विज्ञान विभाग के कार्यों में पुणे स्थित भारतीय कटिबंध मौसम संस्थान भी सहयोग कर रहा है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नागपुर और नई दिल्ली में कुल पांच क्षेत्रीय मौसम विज्ञान केन्द्र खोले गए हैं। इनके अतिरिक्त मद्रास, पुणे, कलकत्ता, नई दिल्ली, भोपाल, चंडीगढ़, श्रीनगर, पटना और भुवनेश्वर में कृषि मौसम विज्ञान सलाहकार सेवा केन्द्र भी खोले गए हैं। उधर बम्बई, कलकत्ता, विशाखापत्तनम, भुवनेश्वर और मद्रास के बन्दरगाहों पर जहाजों तथा मछुआरों को चक्रवात की चेतावनी देने की व्यवस्था भी की गई है। चक्रवात का पता लगाने वाले राडार केन्द्र बम्बई, गोआ, कोचीन, भुजा, कलकत्ता, मद्रास, कराइकल, पारादीप, विशाखापत्तनम और मछलीपत्तनम में लगाए गए हैं।

प्राकृतिक विपदाओं पर नियंत्रण पाने की दिशा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रगति तब से हुई है जब से मनुष्य ने अंतरिक्ष में प्रवेश किया है और वहां उपग्रहों की स्थापना की है। अंतरिक्ष कार्यक्रम के जरिये यदि एक देश दूसरे देश की खुफियागिरी कर सकता है तो वह अंतरिक्ष में स्थापित अपने उपग्रहों से मौसम की स्थिति, नदियों, समुद्रों में आने वाली बाढ़ व तूफान आदि का पता भी लगा सकता है। इनके जरिये संभावित अतिवृष्टि, अनावृष्टि अकाल, सूखे, भयंकर गर्मी या

अत्यधिक सर्दी, भूकंप और भूस्खलन आदि की जानकारी भी उपलब्ध हो सकती है। इस अर्थ में भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली का पहला चरण, जिसे हम इनसेट-1 के नाम से जानते हैं, हमारी पहली उल्लेखनीय उपलब्धि है। इस उपग्रह से न केवल टी.वी. कार्यक्रमों के प्रसारण में विस्तार करने में मदद मिली है, बल्कि इसने दूरसंचार, मौसम विज्ञान, पृथ्वी की स्थितियों पर नजर रखने में भी मदद पहुंचाई है। यदि इसका उपयोग केवल टी.वी. कार्यक्रमों के विस्तार तक ही सीमित होता तो भी वह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि था क्योंकि आज टी.वी. के जरिये हम गांव-गांव, आदिवासी अंचलों, तटवर्ती क्षेत्रों आदि तक महत्वपूर्ण सूचनाएं और आने वाले दिनों की आवश्यक जानकारी चुटकियों में पहुंचाने में सफल हुए हैं। इस उपग्रह के बाद अगस्त 1983 में छोड़े गए इनसैट-1 बी उपग्रह ने हमारे वैज्ञानिक कार्य को और भी अधिक सशक्त बनाया। इसके बाद से तो हमारे अंतरिक्ष कार्यक्रम में लगातार प्रगति होती रही है।

भारतीय दूरसंवेदी उपग्रह प्रणाली ने तो मानो क्रान्तिकारी काम ही कर दिखाया है। इस उपग्रह प्रणाली ने भारतीय पृथ्वी के अनेक-अनेक महत्वपूर्ण चित्र लिए हैं। इस उपग्रह के फलस्वरूप खेती, वानिकी और जल विज्ञान के बारे में आंकड़े उपलब्ध हो सकेंगे। साथ ही फसलों के बारे में पूर्वानुमान लगाने, वनों के मानचित्र तैयार करने तथा उन्हें पहुंचने वाली क्षति का पता लगाने, भूमि के उपयोग से संबंधित मानचित्र तैयार करने, भूमि के कटाव और रेगिस्तान में बदलने की जानकारी इकट्ठी करने, बंजर भूमि का पता लगाने तथा मिट्टी से संबंधित जानकारी एकत्रित करने के बाद बाढ़ आदि से संबंधित अध्ययन करने में सहायता मिल सकेगी।

**सी-2/31 ईस्ट ऑफ कैलाश**
**नई दिल्ली**

प्रधानमंत्री भूकम्प से प्रभावित क्षेत्र में

# अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य योजना

**उद्देश्य और लक्ष्य**

दशक का उद्देश्य विशेष रूप से विकासशील देशों में भूचाल, तूफान, चक्रवात, बाढ़, भूस्खलन, ज्वालामुखी विस्फोट, दावानल, टिड्डीदल का आक्रमण और प्रकोप, सूखा और मरुस्थलीकरण तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण होने वाली जान-माल की हानि और सामाजिक-आर्थिक विघटन को राष्ट्रों की आपसी ठोस कार्रवाई द्वारा कम करना है ।

दशक के लक्ष्य निम्नलिखित हैं:–

(1) जब कभी और जहां कहीं आवश्यक हो, आपदा हानि की सम्भाव्यता का मूल्यांकन करने और शीघ्र चेतावनी प्रणाली तथा आपदा नियंत्रण तन्त्र स्थापित करने में विकासशील देशों की ओर विशेष ध्यान देकर प्राकृतिक आपदाओं के प्रभावों को शीघ्र और प्रभावशाली ढंग से कम करने के लिए प्रत्येक देश की क्षमता में सुधार लाना ।

(2) राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक और आर्थिक विविधता को ध्यान में रखते हुए विद्यमान वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी का इस्तेमाल करने के लिए उपयुक्त मार्गदर्शिकाएं और नीतियां तैयार करना ।

(3) जान-माल की हानि को कम करने के उद्देश्य से जानकारी के अन्तर को पाटने के लिए वैज्ञानिक और इंजीनियरी प्रयासों को प्रोत्साहन देना ।

(4) प्राकृतिक आपदाओं का पूर्वानुमान लगाने, उन पर नियंत्रण करने, और उन्हें कम करने के लिए विद्यमान और नई तकनीकी जानकारी का प्रचार-प्रसार करना ।

(5) तकनीकी सहायता और प्रौद्योगिकी, हस्तांतरण, प्रदर्शन परियोजनाओं और शिक्षा तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम की मार्फत प्राकृतिक आपदाओं का पूर्वानुमान लगाने, उनका मूल्यांकन करने, रोकथाम करने और उन्हें कम करने के लिए उपाय करना तथा इन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना ।

**अंतर्राष्ट्रीय स्तर के नीति उपाय**

सभी राज्य सरकारों को निम्नलिखित उपाय करने हैं :–

(1) राष्ट्रीय आपदा नियंत्रण कार्यक्रम और साथ ही आपदा रोकथाम के लिए आर्थिक, भूमि प्रयोग और बीमा नीतियां बनाना और विशेष रूप से विकासशील देशों में उन्हें उनके राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों में पूर्णतः समेकित करना ।

(2) प्राकृतिक आपदाओं को कम करने के लिए दशक के दौरान ठोस अंतर्राष्ट्रीय कार्य योजना में भाग लेना और जैसा भी उचित हो, दशक के उद्देश्य और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सभी संबंधित वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय समुदायों के सहयोग से राष्ट्रीय समितियां बनाना ।

(3) सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों से आवश्यक सहायता जुटाने हेतु उचित कदम उठाने और दशक के उद्देश्य को प्राप्त करने में अपना योगदान देने के लिए स्थानीय प्रशासन को प्रोत्साहित करना ।

(4) संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को अपने-अपने देशों की योजनाओं और उनके द्वारा दी जा सकने वाली सहायता के बारे में सूचित करना ताकि संयुक्त राष्ट्र दशक के उद्देश्य और लक्ष्यों को प्राप्त करने में सूचना के आदान-प्रदान और अलग-अलग देशों के प्रयासों में तालमेल बैठाने का अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र बन सके और इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र अन्य देशों के अनुभवों का लाभ उठा सके ।

(5) हानि के जोखिम की संभावनाओं के बारे में लोगों में जागरूकता बढ़ाने, प्राकृतिक आपदाओं के सम्बन्ध में पहले से तैयार रहने, उनकी रोकथाम, सहायता और शीघ्र राहत कार्यों के बारे में उचित उपाय करना ।

(6) प्राकृतिक आपदाओं का स्वास्थ्य देखरेख विशेष रूप से अस्पतालों और स्वास्थ्य केन्द्रों पर पड़ने वाले प्रभाव और साथ ही खाद्य भण्डारण सुविधाओं, मानव आश्रय और अन्य सामाजिक व आर्थिक ढांचों पर होने वाले प्रभाव की ओर उचित ध्यान देना ।

(7) आपदा प्रभावित क्षेत्रों में अनिवार्य वस्तुओं के भण्डारण और ऐसी वस्तुओं की सप्लाई सुनिश्चित करके उचित आपात सप्लाई की शीघ्र अंतर्राष्ट्रीय उपलब्धता में सुधार करना ।

सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और गैर सरकारी संगठनों सहित अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा तैयार किये गये और लागू किये

गये कार्यक्रमों तथा गतिविधियों में सहयोग और भागीदारी के लिए वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय संस्थानों, वित्तीय संस्थानों, बैंकों, बीमा कम्पनियों और औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा अन्य सम्बन्धित गैर सरकारी संगठनों को प्रोत्साहित किया जाता है।

**संयुक्त राष्ट्र प्रणाली द्वारा किए जाने वाले कार्य**

संयुक्त राष्ट्र प्रणाली के विभिन्न अंगों, संगठनों और निकायों से अनुरोध है कि वे, जैसा भी उचित हो, प्राकृतिक आपदाओं की रोकथाम, सहायता और राहत कार्यों, जिनमें आर्थिक हानि जोखिम, मूल्यांकन भी शामिल हैं, को अपनी संचलनात्मक गतिविधियों में प्राथमिकता दें। महासचिव से अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में यह सुनिश्चित करें कि संयुक्त राष्ट्र आपदा राहत निकाय के कार्यालय को पर्याप्त साधन मुहैया कराए जाएं ताकि यह अपनी भूमिका और आपदा नियंत्रण के क्षेत्र में महासभा के 14 दिसम्बर 1971 के संकल्प 2816 में निहित अनिवार्यता के अनुरूप अपने उत्तरदायित्वों को पूर्णतः निभा सकें।

महासचिव से, संयुक्त राष्ट्र प्रणाली से संबंधित संगठनों के सहयोग और विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र सचिवालय के सार्वजनिक सूचना विभाग और साथ ही राष्ट्रीय सूचना अधिकारियों से अनुरोध है कि वे दशक के दौरान आम जनता के बीच आपदा रोकथाम की जानकारी बढ़ाने के उद्देश्य से सार्वजनिक सूचना कार्यक्रम तैयार करने और उन्हें लागू करने में सहायता दें।

संयुक्त राष्ट्र प्रवासी समन्वयकों और संयुक्त राष्ट्र प्रणाली के फील्ड प्रतिनिधियों से अनुरोध है कि वे दशक के उद्देश्य और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार के साथ तालमेल बनाकर कार्य करें।

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि प्राकृतिक आपदाएं प्रायः एक देश की सीमा को पार करके दूसरे देश में प्रवेश कर जाती हैं, संयुक्त राष्ट्र के क्षेत्रीय आयोगों से अनुरोध है कि वे दशक की गतिविधियों को लागू करने में सक्रिय भूमिका निभायें।

महासचिव से अनुरोध है कि वे महासभा के संकल्प 32/197 में निहित अनिवार्यता के अनुरूप विकास और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के महानिदेशक को संयुक्त राष्ट्र प्रणाली में दर्शाये गये कार्यक्रमों और गतिविधियों के समेकन और संयुक्त राष्ट्र आपदा राहत कार्यालय के समन्वयक के साथ सहयोग के लिए केन्द्र बिन्दु के रूप में नियुक्त करें।

**दशक के दौरान संगठनात्मक प्रबन्ध**

महासचिव से अनुरोध है कि वे भौगोलिक रूप से समान प्रतिनिधित्व देते हुए और आपदाओं को कम करने के विभिन्न मामलों को ध्यान में रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय प्राकृतिक आपदा नियंत्रण दशक के लिए एक वैज्ञानिक और तकनीकी समिति का गठन करें जिसमें उनकी सरकारों के परामर्श से व्यक्तिगत क्षमताओं और योग्यताओं के आधार पर चुने गये 20 से 25 वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ शामिल हों जिनमें संयुक्त राष्ट्र प्रणाली के विभिन्न अंगों, संगठनों और निकायों के विशेषज्ञ भी लिए जा सकते हैं।

समिति का कार्य राष्ट्रीय स्तर पर पता लगाए गए तकनीकी जानकारी के अन्तरों और प्राथमिकताओं, विशेष रूप से, दशक के दौरान राष्ट्रीय समितियों द्वारा किये गये कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए और दशक के लिए द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सहयोग को तरजीह देते हुए समग्र कार्यक्रम तैयार करना।

**सचिवालय**

महासचिव से अनुरोध है कि वे निम्नलिखित बजट साधनों से वित्त पोषित एक छोटा सचिवालय स्थापित करें :–

(क) सचिवालय संयुक्त राष्ट्र आपदा राहत समन्वय कार्यालय के घनिष्ठ सहयोग के साथ जेनेवा स्थित संयुक्त राष्ट्र के कार्यालय में स्थापित किया जाएगा जिसमें इसके सदस्यों का चयन, आपदा नियंत्रण और अन्य सम्बन्धित विशेषज्ञों के अलावा संयुक्त राष्ट्र संगठनों, सरकारी और गैर सरकारी संगठनों के विशेषज्ञों में से किया जाएगा।

(ख) सचिवालय, दशक के दिन प्रतिदिन के कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा।

**वित्तीय प्रबन्ध**

यह सिफारिश की जाती है कि दशक के कार्यान्वयन के लिए अतिरिक्त बजट संसाधन उपलब्ध कराये जाएं और इसके लिए सरकार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, निजी क्षेत्र सहित अन्य स्रोतों से स्वेच्छिक योगदान को प्रोत्साहन दिया जाये। इस कार्य के लिए महासचिव द्वारा एक ट्रस्ट कोष स्थापित किया जाए जिसका प्रशासन और संचालन वे स्वयं करें।

**समीक्षा**

आर्थिक और सामाजिक परिषद् 1994 के अपने दूसरे नियमित अधिवेशन के दौरान अंतर्राष्ट्रीय कार्य योजना के कार्यान्वयन की एक मध्यावधि समीक्षा करेगी और उसके निष्कर्षों को महासभा को पेश करेगी।

**अनुवाद : किरन गुप्ता**
**4/1611, भोलानाथ नगर, दिल्ली-32**

# बटवारा

□ कन्हैया लाल "मस्त" □

दीनू राम नगरपालिका की नौकरी से अभी-अभी रिटायर हुआ था । पच्चीस रुपल्ली पर चपरासी की नौकरी से शुरू करके दो सौ रुपये के मासिक वेतन पर दफ्तरी के पद तक ही पहुँच पाया था– कम पढ़ा-लिखा जो था । सिर्फ सौ रुपये मासिक पेंशन मिलने लगी थी ।

वह तो भगवान की कृपा हुई कि उसके कोई लड़की न थी, सिर्फ तीन लड़के ही थे जिनको किसी तरह पेट काटकर उसने पढ़ा लिया था । बड़ा लड़का देवाराम बी.ए., मँझला मेवाराम इण्टर और छोटा सेवाराम हाईस्कूल ही कर पाया था । यह तो अच्छा हुआ कि उसके रिटायर होने के पहले ही उसके दोनो बड़े लड़के क्लर्की की नौकरी पर लग चुके थे, अन्यथा उसके इतने बड़े परिवार पर जो आर्थिक संकट आता उसकी आसानी से कल्पना नहीं की जा सकती थी । छोटा लड़का नौकरी की तलाश में था और प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारियों में लगा रहता था ।

नौकरी के दिनों में ही दीनू राम ने थोड़ी-सी जमीन खरीद कर उस पर छोटा-सा दुमंजिला मकान खड़ा कर लिया था । उसी में सब लोग जैसे-तैसे रह लिया करते थे । रिटायर होने के कुछ ही पहले उसने अपने बड़े बेटे देवा राम की शादी कर दी थी और मकान के ऊपर का हिस्सा उसे सौंप दिया था ।

घर के निचले हिस्से में दीनू राम, उसकी पत्नी और शेष दो लड़के मुश्किल से ही रह पाते थे । दिन तो जैसे-तैसे कट जाता, परन्तु रात में सोने की समस्या कठिन हो जाती । दीनू राम अपनी खाट मकान के बाहर वाले चबूतरे पर बिछा कर अपना वक्त काटता रहता । घर-खर्च की समस्या भी पहले से कुछ कठिन हो चली थी क्योंकि बड़े लड़के ने शादी के बाद अपनी तनख्वाह अपने पास ही रखनी शुरू कर दी थी । वह एक प्रकार से अपने को घर से पृथक् समझने लगा था । दीनू राम की पेंशन और मँझले बेटे की तनख्वाह में जैसी गुज़र हो सकती थी, वैसी ही हो रही थी ।

दीनू राम का मँझला बेटा मेवा राम भी अब शादी के योग्य हो चला था । उसके रिश्ते आने लगे थे । निरंतर दबाव पड़ने के कारण वह अधिक दिनों तक उन्हें टाल भी नहीं सकता था क्योंकि छोटे बेटे सेवाराम की नौकरी भी लग चुकी थी और इस तरह आर्थिक समस्या अब उतनी कठिन नहीं रह गई थी । उसने मेवाराम का रिश्ता स्वीकार कर लिया और एक और पुत्रवधू मकान के निचले हिस्से में आकर रहने लगी ।

अब नई बहू के रहते दीनू राम, उसकी पत्नी और छोटा बेटा कहाँ जायें ? इतनी आमदनी नहीं कि कहीं किराये पर मकान लेकर रहने लगें । आखिर बाहर वाले चबूतरे पर तम्बू व कनात लगाकर तीनों ने अपनी खाटें वहीं बिछा लीं ।

मँझले बेटे की बहू ने कुछ दिनों तक चौके में साथ निभाया और अंत में अपना खाना अलग बनाने लगी । रसोई छिन जाने से दीनू राम को बहुत क्लेश पहुँचा, परन्तु उसने घर को अव्यवस्थित होने से बचाने के लिए, चबूतरे के कोने पर एक अंगीठी रखवा ली और वहीं तीनों का खाना बनने लगा । दीनू राम की पत्नी काफी बड़बड़ाई, परन्तु अंत में उसने भी परिस्थिति से समझौता कर लिया ।

मँझला भाई मेवाराम भी अपने बड़े भाई देवा राम के पदचिन्हों पर चलने लगा था और उसने भी अपनी तनख्वाह अपने पास रखनी शुरू कर दी । दीनूराम ने कुछ कहना-सुनना उचित नहीं समझा, क्योंकि दोनों बेटों का तर्क था कि शादी हो जाने के बाद उन पर जो जिम्मेदारी आ पड़ी है, उसे देखते हुए अपनी तनख्वाह में से कुछ देना उनके लिए सम्भव नहीं रहा है । यह ऐसा तर्क था जिसका समर्थन बाहर को कोई भी व्यक्ति कर सकता था । दीनू राम इसे सामाजिक प्रश्न नहीं बनाना चाहता था ।

यों, सारी बातें अपनी जगह सही हो सकती थीं, परन्तु मकान के ऊपर-नीचे दो छोटे-छोटे कमरों में उन दोनों शादीशुदा भाइयों की भी गुजर हो सकना संभव नहीं था । वे सोचते थे कि आखिर हमारे भी तो कभी बाल-बच्चे होंगे, तब हम कहाँ जायेंगे ?

पृथक् होकर दोनों भाइयों में मनमुटाव भी रहने लगा था। छोटे-छोटे कमरे होने के कारण दोनों हवा और धूप को भी तरसते । कभी नल के पानी पर झगड़ा, तो कभी उस एक मात्र पाखाने पर झगड़ा जिसे सारा घर लड़-झगड़ कर बरत पाता

था । कभी रेडियो जोर से बजाने पर, तो कभी बिजली का बिल चुकाने पर तू-तू, मैं-मैं होती रहती । दोनों भाइयों में एक तरह की दुश्मनी-सी पनपने लगी ।

दीनू राम ने उन्हें अपने पास बुलाकर समझाया– "देखो भाई, इस तरह लड़-झगड़ कर दुनियां को हँसने का मौका न दो और समस्या का कोई व्यावहारिक हल निकालने की सोचो । मेरा ख्याल है कि बिजली के अलग-अलग मीटर लगवा लो और जिसके नाम से जितना बिल आये, उसे चुकाने लगो । रेडियो की बात यह है कि उसे मंदी आवाज पर बजाने लगो और रात के दस बजे के बाद बिल्कुल बंद कर दो । ऊपर वाला अपनी छत के आगे एक बाल्कनी बनवा ले जिसमें एक खाट बिछ जाये और ऊपर की छत पर ही नल व पाखाने का इंतजाम कर ले । नीचे के पाखाने को हम जैसे-तैसे बरतते रहेंगे-- जब कोई कठिनाई आयेगी, तो इसके बारे में भी सोच लेंगे ।"

मेवा राम को पिता का यह प्रस्ताव अनुकूल नहीं लगा । वह बोला– "पिता जी, बड़ा भाई इतने दिन ऊपर रह लिया । उससे कहो कि वह अब इसे खाली करके कहीं और चला जाये, जिससे मैं भी कुछ दिन ऊपर रह सकूँ और आप भी नीचे के हिस्से में आराम से गुज़र कर सकें । आखिर सेवा राम की भी तो शादी होनी है, तब आप और वह कहाँ जायेंगे ?"

देवा राम मेवा राम की यह बात सुनकर आग बबूला हो गया । वह भड़क कर बोला– "पिताजी, न तो मैं ऊपर का हिस्सा खाली करुंगा और न इस सम्मिलित मकान में अपनी कोई रकम लगाऊंगा । यदि आप मकान के हिस्से-बाँटे कर दें, हमें अपने-अपने हिस्सों में रकम लगाने में कोई एतराज नहीं होगा । शायद मेवाराम भी यही चाहता है ।"

मेवा राम भी वहीं खड़ा था । उसकी ओर इशारा करके दीनू राम ने उससे कहा-- "यह बात करने से पहले क्या तुमने यह भी सोचा कि यह तुम्हारा सबसे छोटा भाई किधर जाये ? यह भी तो तुम दोनों के समान ही इस मकान में बराबर का साझीदार है । मकान के तो सिर्फ दो ही हिस्से हैं, इसे देने के लिए मैं तीसरा हिस्सा कहाँ से लाऊँगा ? या तो मैं इस मकान को बेचकर उस रकम के चार हिस्से कर के उनमें से तीन हिस्से तुम तीनों में बाँट दूँ और चौथा हिस्सा मैं अपने पास तुम्हारी माँ के लिए रख लूँ, या तुम दोनों को मकान से निकाल बाहर कर दूँ और तीसरे बेटे के साथ इस मकान में आराम से रहने लगूँ । अब बताओ, तुम दोनों अथवा तीनों क्या चाहते हो ?"

पिता के इस कठोर प्रस्ताव को सुनकर दोनों बेटे सन्न रह गये । उन्होंने सोचा भी न था कि उनका पिता नहले पर दहला मार देगा । सेवा राम को भी पिता का यह प्रस्ताव कुछ अटपटा लगा । वह दोनों भाइयों को निकालकर सारे मकान पर केवल अपना ही अधिकार देखना नहीं चाहता था । वह अपने बूढ़े माता-पिता की सेवा तो करना चाहता था, परन्तु भाइयों को कष्ट में डाल कर नहीं । उसने बड़ी विनम्रता से पिता से कहा-- "पिता जी, आप बड़े भाई साहब का प्रस्ताव मान लें । दोनों भाई शादीशुदा हैं, भविष्य में उनके बच्चे भी होंगे ही । क्या आप चाहेंगे कि आपके पोते-पोती इधर उधर भटकते फिरें और आपकी बहुएं नित नये चूल्हे काले करती फिरें ? आप मकान के साथ ही अपने और अम्मा जी के भी हिस्से बाँटे कर दें । मकान को बेचने से तो हमारी प्रतिष्ठा को आंच पहुंचेगी । अच्छा यही है कि घर का झगड़ा घर में बैठ कर ही निबटा लें आप पसन्द करें, तो मैं कोई सुझाव दूँ ?"

सेवा राम की इस समझदारी-भरी बात को सुनकर सब उसका मुँह ताकने लगे । पिता ने कहा- "अच्छा, तुम्हीं बताओ, किस तरह हिस्से-बाँटे किए जाएं ? परन्तु, ध्यान रखना कि जो कुछ किया जाये, वह न्याय के आधार पर ही किया जाए ।"

पिता की स्वीकृति से सेवा राम का हृदय खिल उठा । उसने प्रसन्नतापूर्वक दो टूक शब्दों में अपना विचार सब के सामने प्रस्तुत कर दिया । पिता को सम्बोधित करते हुए उसने धड़ल्ले से कह डाला :-

"पिता जी, क्षमा करें ! इस मामले में एक भयंकर गलतफहमी हो रही है । असल में हिस्से-बांटने के लिए हमारे सामने तीन सम्पत्तियाँ हैं– दो तो इस मकान के ऊपर-नीचे के हिस्से और तीसरे आप स्वयं और अम्मा जी । मैं चाहता हूँ कि मेरे दोनो बड़े भाई मकान के जिस जिस हिस्से में रह रहे हैं, उसकी वसीयत उनके ही नाम कर दी जाये और अपने नाम की वसीयत में मैं आपको और अम्माजी को स्वीकार करना चाहता हूँ ।"

पिता ने सेवा राम को गले लगा लिया । उनकी आँखों से वात्सल्य उमड़ कर बहने लगा था ।

**के० बी० 47,**
**कवि नगर,**
**गाजियाबाद-201 002 (उ.प्र.)**

# प्राकृतिक आपदाएं समस्या और समाधान

□ विनय जोशी □

मानव की प्रगति का मार्ग केवल दो ही कारणों से प्रशस्त हुआ । एक उसके स्वभाव की कभी न शांत होने वाली वृत्ति जो उसे अनन्त की खोज की ओर ले जाती है तथा दूसरी प्रकृति के सभी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष साधनों का सदुपयोग अपने व अपने समाज की सुविधा के लिए इस रूप में करना जिससे उसे प्रकृति पर आधिपत्य जमाने की असीम ऊर्जा प्राप्त होती रहे । इन दोनों कारणों में प्रथम कारण तो उसके अन्तः की प्रगति को आगे बढ़ाता है जिसे भारतीय दर्शन ने अपनाया तथा मानव की स्व की ऊर्जा को जगाया– जिसे आध्यात्मिक जगत का नाम दिया गया ।

दूसरा ढंग, पाश्चात्य सभ्यता ने अपनाया व हमारी विज्ञान की अधिकतर खोजों का कारण बनी । यद्यपि यह पूर्णतया ऋणात्मक प्रवृत्ति थी । परन्तु फिर भी इसे आज के मानव की प्रगति का आधार स्तम्भ का पर्याय माना जाता है ।

वर्तमान में हम अपनी इसी भौतिक प्रगति को ही अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों का आधार बनाकर इसी के सहारे अपने विषय की सार्थकता को देखेंगे ।

प्राकृतिक विपदाओं से हमारा अभिप्राय वास्तव में उन विपदाओं से है जो उसके अपने कारण नहीं बल्कि प्रकृति के उन अवयवों के कारण है जो मानव की पकड़ से परे हैं जैसे धरती पर आ रहे भूकम्प या वायु में होने वाले चक्रवात, (साइक्लोन) समुद्र में आने वाल तूफान या आकाशीय पिंडों जैसे उल्काओं के पृथ्वी पर गिरने से हो रही हानियां । सूर्य के गर्भ में स्वतः हो रहे रासायनिक परिवर्तनों के कारण आकस्मिक परिवर्तनों (अधिक गर्मी या अधिक सर्दी) या सूर्यमण्डल के विभिन्न पिण्डों के अविरल गति के कारण धरती पर हो रहे उनके प्रभावों आदि को हम प्राकृतिक विपदाओं की श्रेणी में गिन सकते हैं ।ये सभी परिवर्तन इतने तीव्र और विशाल होते हैं कि हमारे अधिकार क्षेत्र से परे ही गिने जाते हैं ।

**पृथ्वी**

हमारी पृथ्वी जो सूर्य से अलग हुई है । करोड़ों वर्षों की है अपने सूर्य से ये लगभग नौ करोड़ 36 लाख किलोमीटर (93600,000 मीटर) दूर है । सभी आकाशीय पिण्डों की तरह ही ये भी हर समय अपनी धुरी (एक्सेस) पर तथा सूर्य के चारों ओर लगातार घूमती रहती है । ये प्रारम्भ में आग का एक गोला ही थी । फिर धीरे धीरे इसकी ऊपरी सतह ठण्डी होती गयी । पृथ्वी के इस परिवर्तन के कारण ही सैकड़ों वर्षों तक पहले इस पर वर्षा होती रही, फिर वर्षा का पानी इसकी सतह के उन हिस्सों को दबाकर वहां इक्ट्ठा हो गया जहां भारी खनिज पदार्थ थे व उसने वहां एक विशाल घाटी सी बना ली । इसी भाग को समुद्र कहा जाता है । पृथ्वी के कुछ भारी हिस्सों के दब जाने के कारण इसके आसपास के शेष हिस्से ऊपर उठ गये व पांच अलग-अलग स्थानों पर इन्होंने अपना अस्तित्व दिखाया । इन्हें ही पृथ्वी का शुष्क भू-भाग कहा जाता है । इन्हीं पांच ऊपरी विशाल भूभागों पर सम्पूर्ण मानव जाति रहती है । क्षेत्रफल की दृष्टि से पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग समुद्र से ढका है तथा केवल 29 प्रतिशत भाग ही शुष्क भाग है ।

हमारी पृथ्वी निरन्तर घूम रही है । इसी कारण से इस पर स्वतः ही (गति के कारण) हवा, जल धूल, आदि की एक चादर इसे सदा घेरे रहती है । इसी को हम पर्यावरण के नाम से जानते हैं । इतना ही नहीं हमारी पृथ्वी पर निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं । हमारी आंखें इतने सूक्ष्म परिवर्तनों को इसकी धीमी गति के कारण देख नहीं पातीं परन्तु यह सत्य है कि ये परिवर्तन लगातार हो रहे हैं । यद्यपि इस पर समय समय पर आये भूचाल व लावा उगलते हुए ज्वालामुखियों के कारण जो परिवर्तन होते हैं उन्हें तो सभी देख ही सकते हैं । सन् 1943 में मेक्सिको में फटे ज्वालामुखी से निकले लावे को वैज्ञानिक आज भी याद रखे हुए हैं जिसमें पांच ही दिन में पृथ्वी की सतह पर 300 फुट ऊंचा त्रिशंकु (त्रिकोणीय) खड़ा कर दिया था । इतना ही नहीं यद्यपि इसकी (लावा की) गति कुछ कम तो हो गयी परन्तु फिर भी एक वर्ष के समाप्त होने तक इसके लावे ने इस विशाल पहाड़ को 1500 फुट ऊंचा कर दिया । इसे आज भी "पैरिक्यूटीन" ज्वालामुखी के नाम से जाना जाता है । पिछले दशक में भी फिर से मैक्सिको व भारत में इस प्रकार के हादसे हो चुके हैं । ज्वालामुखी वास्तव में पृथ्वी के स्वरूप को बदलने में काफी अधिक भाग लेते हैं ।

ये ज्वालामुखी तथा भूचाल पृथ्वी पर मानव को सबसे अधिक हानि पहुंचाते हैं । आइये जाने ये भूकम्प क्यों आते हैं ।

**भूकम्प**

पृथ्वी का अति केन्द्रीय भाग ठोस रूप है जिसके ऊपर का काफी बड़ा भाग तरल रूप में सदा बना रहता है । वैज्ञानिकों ने सिस्मोग्राफ के द्वारा पता लगाया है कि पृथ्वी के उस ठोस केन्द्र की त्रिज्या 800 मील है । अर्थात् यह भाग 2240000 (बाईस लाख चालीस हजार) वर्ग मील क्षेत्र का है । इसके बाद वाले तरल कोर का क्षेत्र ठोस भाग के चारों ओर 1400 मील और चौड़ा भाग है । उस तरह पदार्थ को चारों ओर से 1800 मील और मोटी ठोस दीवार ने चारों ओर से घेरा हुआ है । इस भाग को वैज्ञानिक "मैन्टल" नाम से पुकारते हैं । मैन्टल से ऊपर की पृथ्वी की परत शुष्क भाग में लगभग 22 मील तथा समुद्र के अन्दर वाले भाग में लगभग तीन मील मोटी है । मैन्टल तक बास्य परत के बीच वाले भाग को यूगोस्लाविया के नाम पर मोहो नाम रखा गया है ।

पृथ्वी के भीतरतम् भाग में से पृथ्वी की अपनी गति के कारण तरल पदार्थ अपना दबाव डालता है जो दबाव तरंगों के द्वारा पृथ्वी के केन्द्र से होता हुआ उसे आर-पार कर जाने की पूरी-पूरी क्षमता रखता हैं । ये तरंगें सीस्मिक तरंगें कहलाती हैं । ये तरंगे जब पृथ्वी के मैन्टल वाले ठोस भाग को भेदती हुई बाहर निकलती हैं तो पृथ्वी का वह पूरा हिस्सा ही कांप जाता है । इसे ही आम भाषा में भूचाल या भूकम्प कहा जाता है । इसी कारण मानव द्वारा बनाए गए गगनचुम्बी भवन धराशायी हो जाते हैं । इन तरंगों से कम से कम क्षति हो इसके लिए वैज्ञानिकों ने सिस्मोग्राफ नामक यंत्र का आविष्कार किया है । जिसके द्वारा पता लगाया जा सकता है कि भूकम्प की गति, उसकी शक्ति आदि कितनी है । ऐसा करने से मानव जीवन को बचाया जाता है । इसके अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने ऐसे घरों का निर्माण करना भी प्रारंभ कर दिया है जिन पर भूकम्पों का प्रभाव नगण्य हो । इसके लिए घरों की नींव में रबड़ या इसी प्रकार इलास्टिक वाले पदार्थों को भरा जायेगा जो भूचाल की तरंगों के झटकों को केवल स्वयं ही सह लेगी शेष इमारत पर इसका असर नहीं होगा । इसके अतिरिक्त लकड़ी के घरों का निर्माण तो काफी समय से यूँ भी हो रहा है ।

वैज्ञानिकों के अनुसार भूकम्पों के आने का एक और कारण खनन तथा समुद्र में से पैट्रोलियम पदार्थों को द्रुत गति से निकाला जाना भी हो सकता है । पेट्रोलियम पदार्थ वास्तव में पृथ्वी में उपस्थित ठोस रूप का तरल रूप में रूपान्तरण के कारण पैदा हुआ पदार्थ ही तो है । इसलिए पैट्रोलियम पदार्थ का निवास पृथ्वी के विभिन्न पर्तों को और अधिक तेजी से टूटने पर मजबूर कर देता है इसलिए इससे बचने के लिए हमें पेट्रोलियम को छोड़ अब ऊर्जा का कोई और साधन अपनाना होगा । अन्यथा हम स्वयं ही अपनी पृथ्वी पर उन आपदाओं को निमंत्रण दे रहे माने जायेंगे ।

**बचाव**

यद्यपि भूकम्पों को रोका नहीं जा सकता बस कुछ सावधानियों को अपनाकर इसके द्वारा होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है । जैसे प्रायः भूकम्प के नाम से ही लोग घबरा जाते हैं व फिर लगातार भागने लगते हैं । इस भगदड़ के कारण व कभी-कभी किसी बन्द कमरे में भगदड़ से वायु अवरूद्ध हो जाती है तथा इस प्रकार सांस लेने में कठिनाई के कारण भी लोग मृत्यु की गोद में पहुंच जाते हैं । यदि आप कमरे में हैं तो इसके कोने में खड़े हो जायें ।

**समुद्र**

हमारी दूसरी आपदा है समुद्र । वैज्ञानिको के अनुसार समुद्र कभी न रुकने वाली एक अविरल घाटी है जिसका जल कभी समाप्त नहीं होगा । केवल इतना ही नहीं जल हमें इतना भोज्य पदार्थ दे सकता है कि कई सदियों तक पृथ्वी पर के सभी मानव उस पर निर्भर हो जायें तो भी इसका भण्डार कभी समाप्त नहीं होगा । परन्तु दूसरी ओर प्रतिवर्ष समुद्र में आये तूफानों के कारण समुद्र से लगे सभी तटीय प्रदेशों को जान-माल की भी बहुत अधिक हानि पहुंची ।

**बचाव**

यद्यपि समुद्री ज्वार भाटे को रोक पाना अत्यधिक कठिन ही नहीं बल्कि असंभव ही है । समुद्र के किनारे वाले क्षेत्रों तथा टापुओं पर लगभग हर वर्ष ही सैकड़ों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ जाता है । चाहे श्रीलंका हो या भारत के दक्षिणी पूर्वी या दक्षिणी पश्चिमी भाग या विश्व के दूसरे देश, कोई भी तटीय क्षेत्र इन तूफानी विपदाओं से बचा नहीं रह सका है । फिर भी केवल दो ही विकल्प रह जाते हैं इन प्रभावों को कम करने के लिए । एक समुद्र से तेल को इतनी तीव्र गति से न निकाला जाये जिससे समुद्री ज्वार भाटे को कम किया जा सके । दूसरे, जान-माल की रक्षा के लिए पूर्व सूचना

देने के बाद समय पर ही उन्हें उन प्रभावी क्षेत्रों से हटा लिया जाये ।

**3. आकाशीय पिण्ड**

हमारे सौर परिवार में मार्स व बृहस्पति के बीचों बीच एक चौड़ी पट्टिका है जिसमें खगोलीय पिण्ड (एस्ट्रोयेड्स) भरे रहते हैं। ये पिण्ड लगातार घूमते रहते हैं । इनका आकार एक इंच से लेकर लगभग एक सौ अस्सी किलोमीटर व्यास तक होता है। ये आकाशीय पिण्ड जितनी तीव्र गति से घूमते हैं वे उतनी ही कम ताकत से आपस में जुड़े होते हैं । इसीलिए समय-समय पर वे अपनी धुरी पर घूमते-घूमते पदार्थ के ठोस कण वहां से अलग हो जाते हैं व हमारी पृथ्वी की ओर भी बढ़ते हैं । हमारी पृथ्वी को घेरे हुए कई परतें लगभग 140 किलोमीटर से 170 किलोमीटर की गति से घूमती रहती हैं। ये आकाशीय पिण्डों को वही वेग प्रदान कर देती हैं जिसके कारण वे पृथ्वी पर नहीं गिरते । परन्तु फिर भी कई पिण्ड बड़े होते हैं वे अपने भार के कारण पृथ्वी की परत के वेग को भेद देते हैं। पृथ्वी पर गिरकर तबाही मचा देते हैं। इस आपदा से बचने का भी कोई साधन नहीं दिखाई देता । वैज्ञानिकों के अनुसार लगभग 125 वर्ष बाद यानी सन् 2115 के पास एक ऐसा ही विशाल आकाशीय पिण्ड पृथ्वी से टकराने वाला है ।

**बचाव**

वैज्ञानिकों ने एक ढंग खोजा है उसके अनुसार वे पृथ्वी से रॉकेट पर रखकर एक अणु बम उस आकाशीय पिण्ड पर दाग देंगे जो रास्ते में ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर देगा । इस प्रकार उस प्राकृतिक आपदा से हमारा बचाव हो सकेगा । यद्यपि यह ढंग अत्यधिक खर्चीला है तथापि यही एकमात्र साधन है जो हमारा बचाव कर सकता है ।

**सूर्य**

सूर्य, जिसकी उम्र वैज्ञानिक लगभग 5,000,000,000 वर्ष मानते हैं आग का गोला है । सूर्य का भार पृथ्वी से 332,488 गुणा अधिक है व दूरी लगभग 9,30,00000 (नौ करोड़ तीस लाख मील) है । इसका तापमान 11,000 डिग्री फैरनहाइट माना जाता है । सूर्य की यह रोशनी जो पीले रंग की मानी जाती है अपने गर्भ में पैरा बैंगनी किरणों के समूह को भी लिये रहती हैं जो लगातार हमारी पृथ्वी पर इन्हीं प्रकाश किरणों के साथ आती रही हैं । ये किरणें अगर अधिक मात्रा में पृथ्वी पर आ जायें तो हम पृथ्वीवासियों को त्वचा का कैंसर व शायद एड्स जैसे भयंकर रोग भी लग सकते हैं । वास्तव में हमारे शरीर में उपस्थित रक्त में सफेद रंग के (कोष्टक) सैल उन पैराबैंगनी किरणों के द्वारा नष्ट होते ही हमारे शरीर का रक्षा तंत्र टूट जाता है व हमें भयंकर बीमारियां आ घेरती हैं। किरणें पृथ्वी पर दो ही कारणों से पहुंच सकती हैं । एक, यदि सूर्य या चन्द्र ग्रहण हो व दूसरे यदि हमारे पर्यावरण में से ओजोन की परत टूट जाये ।

**बचाव**

वैज्ञानिकों ने इससे बचने के उपाय हमें बताये हैं । ग्रहण के समय पर हमें दो सावधानियां कर लेनी चाहिए । सूर्य की ओर सीधे ही नंगी आंखों से नहीं देखना चाहिए इससे आंखों का बचाव संभव है । धरती पर प्रकृति ने एक विशेष प्रकार की नरम कुशा हमें दी है । ये घास की तरह की ही मुलायम झाड़ी सी होती है । इसकी विशेषता यह है कि ये इन पैराबैंगनी किरणों को सोख लेती है । इसलिए इस प्रकार की कुशा को हर खाने पीने वाली सामग्री पर डाल देना चाहिए । इससे काफी हद तक बचा जा सकता है ।

दूसरे, अपनी ओजोन परत की रक्षा । हमें इन गैसों जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड तथा क्लोरो फ्लोरो, कार्बन जैसी गैसों को प्रयोग में नहीं लाना चाहिए तथा वृक्षों को अधिक से अधिक मात्रा में उगाना चाहिए । केवल इन्हीं दोनों ढंगों से ही हम अपनी धरती व मानवता को सूर्य की इन भयंकर किरणों से बचा सकते हैं ।

वास्तव में प्राकृतिक आपदाओं को पूर्णतया टाला तो नहीं जा सकता बस अपने आचरण में सरलता तथा वैज्ञानिकों द्वारा सुझाई गयी कुछ सावधानियां अवश्य बरतनी चाहिए ।

**सरदारनी सदा कौर खालसा स्कूल**
**दरियागंज, नई दिल्ली**

# विनाशकारी प्रकोप : एक राष्ट्रीय अवलोकन

□ जे.वैंकटेश्वर लू*□

दक्षिण एशिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में सूखे और बाढ़ का प्रकोप एक आम बात है। सूखा निरंतर और लम्बे समय तक प्रभाव डालता है जबकि बाढ़ का प्रकोप विनाशकारी तो होता है लेकिन वह कभी-कभी और थोड़े समय के लिए होता है। सूखे के प्रभाव को कम करने के ज्यादा आसार हैं, लेकिन बाढ़ को रोक पाना एक कठिन काम है।

दोनों ही आपदाएं समाज के लिए विनाशकारी होती हैं, आम तौर पर इनसे सबसे अधिक गंभीर हानि कृषि उपज को होती है। प्रायः फसलें नष्ट हो जाती हैं। वृक्ष संपदा को नुकसान पहुंचता है और भारी संख्या में पशु मारे जाते हैं। निम्नलिखित पैराग्राफों में इन दो प्रकार के प्रकोपों के संबंध में भारत द्वारा किए गए प्रयासों का उल्लेख किया गया है :

**सूखा**

सूखा, सूखेपन और वर्षा अथवा पानी की कमी का द्योतक है। जैसे ही कुल वर्षा में कमी होती है वर्षा के उतार-चढ़ाव में वृद्धि हो जाती है। वास्तव में यदि कहीं वर्षा में औसत मात्रा से 30% अधिक की कमी आती है तो उन क्षेत्रों को सूखा प्रभावित क्षेत्र कहा जाता है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 72 जिलों में 60 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र सूखा प्रभावित है। फिर भी सूखे का प्रभाव फसल की 50 प्रतिशत हानि तक हो सकता है।

**सूखे का प्रकोप**

भारत एक विशाल देश है जिसमें अलग-अलग मानसून वाले 35 भूखण्ड हैं। इसलिए सूखे का प्रभाव समय और स्थान के अनुसार प्रति वर्ष अलग-अलग होता है। 1984 से 1987 के बीच भारत में लगातार सूखा रहा जिसके प्रभाव को तालिका-1 में दर्शाया गया है।

**तालिका-1**

**1984-1987 के सूखे का प्रभाव**

| सूखे के प्रभाव | 1984 | 1985 | 1986 | 1987 |
|---|---|---|---|---|
| कम वर्षा वाले भूखण्डों की संख्या | 9 | 9 | 14 | 21 |
| जिलों की संख्या | 151 | 189 | 280 | 263 |
| जनसंख्या (दस लाख में) | 70.4 | 78.6 | 191.9 | 285.4 |
| फसल क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर में) | 15.4 | 28.2 | 40.0 | 58.6 |
| मानसून अवधि में खाद्यान्न उत्पादन (मीट्रिक टनों में) | 84.5 (–5.5) | 86.2 (–3.7) | 80.2 (–11.2) | 73.9 (–20.7) |

नोटः कोष्ठक में दर्शाए गए आंकड़े 1983 के सामान्य वर्ष की तुलना में उत्पादन में कमी को दर्शाते हैं।

* निदेशक, केन्द्रीय शुष्क जोन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर.

किसी भी क्षेत्र में सूखे का प्रकोप सदैव नहीं रहता। कभी-कभी ऐसा देश के कम वर्षा वाले क्षेत्रों में होता है। दूसरे शब्दों में कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सूखे की समस्याएं अधिक गंभीर होती हैं। उदाहरण के तौर पर कर्नाटक, उत्तरी कर्नाटक के बिलेरी क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है जो कि लगभग 508 मि.मी. आंकी गई है और हर दस वर्षों में से प्रत्येक 5 वर्ष सूखे से प्रभावित होते हैं। दूसरी ओर असम और मेघालय के अधिक वर्षा (1000 मि.मी. से अधिक) वाले क्षेत्रों में भी 15 वर्षों में एक बार सूखा दिखाई पड़ सकता है।

**खाद्यान्न उत्पादन में उतार चढ़ाव**

जैसे ही वर्षा की कमी होती है मानसून के मौसम में उत्पादन कम हो जाता है जिसे तालिका-2 में दर्शाया गया है।

**तालिका-2**

**चुनिंदा वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन**

| वर्ष | अनुकूल/प्रतिकूल मानसून | खाद्यान्न उत्पादन: मानसून के दौरान | खाद्यान्न उत्पादन: मानसून के पश्चात |
|---|---|---|---|
| 1966-67 | प्रतिकूल | 48.89 | 25.34 |
| 1970-71 | अनुकूल | 68.92 | 39.50 |
| 1971-72 | प्रतिकूल | 62.99 | 42.18 |
| 1972-73 | प्रतिकूल | 58.64 | 38.39 |
| 1973-74 | अनुकूल | 67.84 | 36.83 |
| 1982-83 | प्रतिकूल | 69.90 | 59.62 |
| 1983-84 | अनुकूल | 89.23 | 63.14 |
| 1984-85 | प्रतिकूल | 84.52 | 61.02 |
| 1986-87 | प्रतिकूल | 80.20 | 63.22 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1987-88 | प्रतिकूल | 74.56 | 65.79 |
| 1988-89 | अनुकूल | 95.64 | 74.28 |
| 1989-90 | अनुकूल | 100.94 | 69.69 |

मानसून में हुई हानि को मानसून के बाद की अवधि में सिंचाई सुविधाओं सहित अन्य निवेशों के प्रभावकारी प्रयोग द्वारा पूरा किया जा सकता है । इन दोनों अवधियों में भारत में उत्पादन के आंकड़ों के विश्लेषण से यह बात सिद्ध होती है जिसे तालिका-3 में दर्शाया गया है :

**तालिका-3**
**उत्पादन स्तर**

| अवधि | कुल खाद्यान्न उत्पादन में उतार-चढ़ाव (मि. टन) |
|---|---|
| 1940-50 से 1951-52 | 50.8 से 54.9 |
| 1960-61 से 1966-67 | 72.3 से 89.4 |
| 1970-71 से 1974-75 | 97.0 से 108.4 |
| 1978-79 से 1982-83 | 109.7 से 131.9 |
| 1983-84 से 1987-88 | 138.4 से 152.4 |
| 1988-89 से 1989-90 | 169.9 से 170.6 |

स्रोत : आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

यह उल्लेखनीय है कि उत्पादन प्रणालियों में नए तरीकों के आज जाने से अब यह स्पष्ट है कि भारत में खाद्यान्न उत्पादन में काफी उतार-चढ़ाव आया है । यदि उत्पादन रुख को गहराई से देखा जाए तो 1960 के दशक से देश के खाद्यान्न उत्पादन में काफी वृद्धि हुई थी ।

ये परिणाम ऊर्जा, जल संसाधन, पैट्रोलियम, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, महिला और बाल विकास तथा वाणिज्य मंत्रालयों जैसी सरकारी एजेंसियों तथा अनुसंधान तथा विस्तार संस्थाओं के संयुक्त प्रयासों से संभव हो सकती हैं । वास्तव में 1987 में गंभीर सूखा पड़ा था तब देश के 21 अलग-अलग मानसून वाले उप प्रभागों में गंभीर सूखे की स्थिति थी, तब सूखे की गंभीर समस्याओं से निपटने के लिए इन सभी मंत्रालयों ने एक साथ मिलकर एक कार्य योजना तैयार की थी । सूखे की गंभीर स्थिति के बावजूद भी इन प्रयासों का परिणाम यह निकला कि खाद्यान्न का उत्पादन 3.89 मिलियन टन हुआ जो कि सामान्य उत्पादन से केवल 10 प्रतिशत कम था । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अब जहां तक खाद्यान्न के उत्पादन का संबंध है, उस पर सूखे के प्रभाव को कम करना संभव हो गया है । संयुक्त प्रयासों में निम्नलिखित शामिल हैं :

* मौसम के बीच में उपचारात्मक उपाय करने के लिए मौसम की निगरानी ;
* मानसून पश्चात मुआवजा कार्यक्रम ;
* प्रमुख नदी घाटी परियोजनाओं के अंतर्गत पानी का सही बटवारा ;
* चारा बैंकों की मार्फत चारे की उपलब्धता बढ़ाना ;
* पशुओं के कैम्प आयोजित करने, पानी की सप्लाई, स्वास्थ्य देखभाल आदि के लिए गैर सरकारी संगठनों को शामिल करना ;
* कृषि पम्पों के लिए कम से कम 8-10 घंटों के लिए बिजली का प्रबंध करना ;
* अनिवार्य वस्तुओं की सप्लाई के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यवस्था करना और
* ग्रामीण स्तर पर रोजगार जुटाना और लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना ।

**चारे की कमी को दूर करने के साधन**

1987 में कुल 214.3 मिलियन पशुधन में से 120.4 मिलियन पशुधन प्रभावित हुआ था। भारत सरकार ने 38.000 मि. टन वन घास और लगभग 176.00 हेक्टेयर क्षेत्र में चारे के उत्पादन को प्रोत्साहित करके समस्या का समाधान किया था । इसके अतिरिक्त अत्यधिक प्रभावित क्षेत्रों में 1.7 मिलियन पशुओं के लिए 2200 पशु कैम्प आयोजित किए गए थे । निस्संदेह इसके बाद भी नियमित चारा बैंकों की मार्फत चरागाह भूमि पर बहुउद्देशीय वृक्ष लगाकर कम चारा वाली अवधि में चारे की उपलब्धता को बढ़ाने में ये प्रयास और भी बढ़ा दिए गए ।

**खाद्य सुरक्षा प्रणाली**

सूखे की स्थिति में सबसे अधिक प्रभावित छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर होते हैं । ये किसान इसलिए प्रभावित होते हैं कि इनकी भूमि घटिया किस्म की होती हैं । यह ज्यादा पानी को सहन नहीं कर पाती । चूंकि आम तौर पर खेती प्रभावित होती है इसलिए भूमिहीन कृषि मजदूरों की आय में भी भारी कमी आ जाती है । आय सृजन के इस अंतर को पाटने के लिए भारत सरकार ने 62,400 लाख रुपये खर्च करके और लगभग 6.0 मिलियन लोगों को शामिल करके वन रोपण, भूमि

संरक्षण, सिंचाई, सड़क और भवन निर्माण के लगभग 1,20,000 निर्माण कार्य किए तथापि ऐसी स्थिति से निपटने के लिए तैयार रहने हेतु परियोजनाएं विकसित करके प्रणाली में और सुधार किए जाने की आवश्यकता है ।

**गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका**

पशु कैंम्पों के आयोजन में गैर-सरकारी संगठन सक्रिय रूप से भाग लेते हैं । उन्हें भूगत जल का पता लगाने में सहायता करने के अलावा निःशुल्क पोषाहार केन्द्र चलाने के लिए भी सहायता दी जाती है । वे मानव जाति और पशुओं, दोनों के लिए पानी उपलब्ध कराने में और स्वास्थ्य देखभाल करने में भी सहायता करते हैं ।

भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् (कॉपार्ट) नामक एक संस्था है जो गैर सरकारी संगठनों को धन राशि उपलब्ध कराने वाली एक प्रमुख एजेंसी है ।

यह संस्था उपरोक्त कार्यों के अलावा वन रोपण और भूमि संरक्षण की मार्फत संसाधनों के संरक्षण संबंधी कार्यों के लिए गैर-सरकारी संगठनों को विद्यमान सब्सिडी के साथ अनुदान, ब्याज-मुक्त ऋण और अन्य निधियां प्रदान करती है ।

**सूखा प्रबंध**

उपरोक्त विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

* उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सूखा पड़ना एक आम बात है । औसत वर्षा से कम वर्षा होने की स्थिति में यह विकट रूप धारण कर लेता है ।
* सूखे के कारण खाद्यान्न और चारे के उत्पादन में कमी हो जाती है ।
* उत्पादन के इस अंतर को पाटने के लिए अब मौसम के आकलन और प्रतिपूर्ति कार्यक्रमों पर आधारित वैकल्पिक फसल लेने की नीति अब उपलब्ध है । ऐसे प्रतिपूर्ति कार्यक्रम में मानसून पश्चात फसल लेने को महत्व दिया जा रहा है ।
* वनों की घास का प्रयोग करके चारा क्षेत्र में सिंचाई सुविधाएं बढ़ा कर और बहुउद्देश्यीय वृक्ष लगाकर चारा भंडार को बढ़ाया जा सकता है ।
* उत्पादन प्रौद्योगिकियों से कुल खाद्यान्न उत्पादन बढ़ा है । भारत के 40 वर्षों की अवधि में उत्पादन 50 मि.टन से बढ़कर 170 मि. टन हो गया है । यह अनुसंधान विस्तार और अन्य निवेश उपलब्ध कराने वाली एजेंसियों के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप संभव हो सका है ।
* फिर भी एक सुसंगठित खाद्य सुरक्षा प्रणाली अनिवार्य है ताकि सूखे की अवधि में भारी मांग को पूरा करने के लिए खाद्यान्नों का पर्याप्त भंडार किया जा सके ।
* इसके साथ ही विशेष रूप से छोटे किसानों और भूमिहीन मजदूरों को सार्थक रोजगार सृजन की योजनाओं की मार्फत उनकी आय बढ़ाई जानी चाहिए ।
* सूखे के वर्षों के दौरान धनराशि की कठिनाई से बचने के लिए पहले से परियोजनाएं तैयार करने की नीति बनाए जाने की आवश्यकता है ।
* निरंतर सूखा प्रभावित क्षेत्रों के मामले में प्रायः 25-23 प्रतिशत खाद्यान्न की कमी हो सकती है । ऐसे मामलों में बच्चों, गर्भवती महिलाओं और जच्चाओं के पोषाहार और स्वास्थ्य देखभाल की विशेष आवश्यकता है ।

**बाढ़**

उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में बाढ़ का आना कोई असामान्य बात नहीं है । यह मानव विज्ञान और प्राकृतिक दोनों कारणों से आती है ।

**बाढ़ के मानवीय कारण**

मानव द्वारा प्रमुख नदियों के आस-पास के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर पेड़ काट लिए जाने से वर्षा का पानी समतल क्षेत्रों की ओर तेजी से बहता है जिसके कारण वहां बाढ़ आ जाती है और पानी खड़ा रहता है । यह पानी समय के अनुसार प्राकृतिक निकासी अर्थात् नदियों में चला जाता है और कुछ भाप बनकर सूख जाता है और जैसे-जैसे यह क्षेत्र सूखता जाता है तब उस पर फसल ली जाती है । भारत में ''दियारा'' भूमि ऐसा ही उदाहरण है ।

**'दियारा' भूमि का प्रबंध**

दियारा भूमि प्राकृतिक स्तरों के बीच होती है जो कि अलग-अलग अवधि के लिए पानी से भरी रहती है और नदियों के बहाव में परिवर्तन द्वारा समय-समय पर घटती-बढ़ती रहती है । असम की घाटियों, बिहार और उत्तर प्रदेश के मैदानों में ब्रह्मपुत्र और गंगा की तराई में 4.8 मि. हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ से प्रभावित है ।

आज बाढ़ के आने और उसकी अवधि के बारे में विश्लेषण किया जा चुका है और ऐसी परिस्थितियों में फसल लेने के तरीके भी निकाल लिए गए हैं । गंगा की तराई में बाढ़ से पूर्व की अल्पावधि में शीघ्र उगने वाले खाद्यान्नों की खेती की जा सकती है । बाढ़ के पश्चात गेहूं, मक्का, आलू आदि जैसी

फसलें ली जा सकती हैं। शीघ्र उत्पादन वाली सब्जियों पर भी विचार किया जा सकता है। दूसरी ओर ब्रह्मपुत्र की तराई में मानसून के दौरान 2-3 बाढ़ वाले क्षेत्रों में चावल की अहु और बोरो किस्में उगाना सर्वोत्तम है।

बाढ़ वाले अन्य क्षेत्रों में आकस्मिक फसल लेने की योजना बनाने हेतु इसी प्रकार की कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता है।

**चक्रवात के कारण प्राकृतिक बाढ़**

बाढ़ के प्राकृतिक कारणों में चक्रवात और स्थानिक भारी वर्षा और उसका भीषण प्रकोप शामिल हैं। भारत में आन्ध्र प्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में चक्रवात और राजस्थान में लूनी तराई में भारी वर्षा बाढ़ के कारण हैं।

**चक्रवात**

आन्ध्र प्रदेश में 1030 कि. मीटर का तटवर्ती क्षेत्र है और हर वर्ष एक या दो चक्रवात आ जाना आम बात है। पिछले 97 वर्षों में इस तटवर्ती क्षेत्र में 67 चक्रवात या समुद्री तूफान आये हैं। ये प्रायः सितम्बर-दिसम्बर में आते हैं लेकिन कभी-कभी अप्रैल मई में भी आ जाते हैं। राज्य का सरकारी तन्त्र और तटवर्ती क्षेत्रों के लोग इसके आदी हो चुके हैं। राज्य सरकार ने राज्य की राजधानी में एक केन्द्रीय नियंत्रण कक्ष बनाया हुआ है जिसका संचालन राज्य का राजस्व विभाग और पुलिस करती है। इस समूह में दूरसंचार विभाग और सेना भी साथ होती है।

**चक्रवात का कारण**

चक्रवात तेज गति के तूफान के कारण आता है। इसमें 4 मीटर तक ऊंची लहरें उठती हैं जो तटवर्ती क्षेत्र तक जाती हैं और कुछ क्षेत्रों में 10 कि.मी. अंदर तक चली जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में वर्षा भी बहुत अधिक होती है। 1990 के चक्रवात में हुई हानियों में निम्नलिखित शामिल हैं :

सिंचाई नहर प्रणाली क्षतिग्रस्त हुई, लघु सिंचाई प्रणाली को भारी नुकसान पहुंचा, सभी छोटी तथा बड़ी नदियों में बाढ़ आ गई, समुद्री तूफानी लहरों के कारण खारा पानी पीने के पानी के सभी तालाबों में मिल गया, अधिकांश सड़कें और पुल नष्ट हो गए जिससे सहायता कार्यों में बाधा आई, बिजली की सप्लाई अस्त-व्यस्त हो गई, खड़ी फसलें नष्ट हो गईं, बागवानी वाले पौधे और वृक्ष नष्ट हो गए, भारी संख्या में पशु और पक्षी मारे गए, तटवर्ती मछियारे बुरी तरह प्रभावित हुए, बहुत से ताजे पानी के मछली तालाब और खारे पानी वाले झींगा मछली तालाबों को नुकसान पहुंचा, रिहायशी मकानों का तरह-तरह का भारी नुकसान हुआ।

**पूर्वसुधारात्मक उपाय**

राज्य में चक्रवात का आना आम बात होने के कारण राज्य सरकार पहले से ही कुछेक उपचारात्मक उपाय करती रही है। जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

तटवर्ती बांधों का निर्माण, चक्रवात आश्रयों का निर्माण, पूर्व चेतना प्रणाली, बाढ़ वाले क्षेत्रों से लोगों को निकालने का प्रबंध, चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था, बाढ़ वाले क्षेत्रों में खाने, पानी और दूध के पैकट पहुंचाना, जहां-कहीं संभव हो वहां टैंकरों और नावों की मार्फत पीने का पानी पहुंचाना, बाढ़ के कारण फैलने वाली सम्भावित महामारी को रोकने के उपाय।

**प्रस्तावित राहत उपाय**

चक्रवात के इन प्रभावों विशेष रूप से छोटे किसान समुदाय के लिए प्रभावों को कम करने के लिए अनेक राहत कार्यों का प्रस्ताव किया गया है। जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

खड़ी फसलों के नुकसान पर मुआवजा, खेतों में रेत की परत और समुद्र का पानी आ जाने से प्रभावित किसानों को सहायता, उन किसानों को सहायता जिनके 50% और अधिक बागान नष्ट हो गए हैं, कृषि विश्वविद्यालय की क्षतिग्रस्त हुई अनुसंधान व्यवस्था का पुनर्निमाण, बागवानी, नर्सरी तथा बीज बागान की पुनर्स्थापना का विकास, प्रतिपूर्ति फसल प्रणाली, मछली तालाबों की मरम्मत, मछियारों को साज-समान की व्यवस्था, मछली पालन, विशेष रूप से मछली तालाबों में सुधार करने हेतु सहायता।

**चक्रवात प्रभावों को कम करने के अनुसंधान प्रयास**

चक्रवात के प्रभावों को कम करने के लिए स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय ने कई सुझाव दिए थे। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

तटवर्ती लहरों से प्रभावित क्षेत्रों में सुधार, रेत की परत आ जाने वाले क्षेत्रों का सुधार, चावल की फसल वाले प्रभावित क्षेत्रों में फसल रोपण, वर्षा प्रभावित क्षेत्रों में वैकल्पिक खेती, क्षतिग्रस्त बागानों का प्रबंध, मुर्गी पालन, पक्षियों को बचाए रखने के लिए बाद की देखभाल, दुधारु पशुओं के लिए बाद की देखभाल और विशेष रूप से उनमें होने वाली बीमारियों पर नियंत्रण, और चारा तथा चरागाहों का उचित उपचार।

**चक्रवात के प्रभावों को कम करने हेतु विकासात्मक प्रयास**

राज्य के कृषि विभाग ने इन चक्रवात प्रभावित क्षेत्रों में फसलों के प्रबंध हेतु कई विकल्प उपलब्ध कराए हैं। उन्होंने

कच्चे माल की सप्लाई, समुद्री पानी से प्रभावित क्षेत्रों के सुधार, रेत की परत वाले क्षेत्रों का सुधार आदि सहित विभिन्न कार्यक्रमों के लिए तत्काल सहायता प्रदान की है। राज्य सरकार ने 1990 के चक्रवात से हुए नुकसान की पूर्ति के लिए 83 मिलियन रुपए की व्यवस्था की थी, जिसमें से अक्तूबर 1990 तक 65 मिलियन रुपए खर्च किए जा चुके थे। राज्य वन विकास निगम तटवर्ती क्षेत्र में 111.1 मिलियन रुपए की लागत से वृक्ष लगाने की योजना पर विचार कर रहा है।

**चक्रवात प्रबंध**

उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि चक्रवात से अन्य ढांचा संबंधी सुविधाओं के अलावा कृषि को भारी हानि होती है। यह बड़ी मात्रा में मानव और पशुओं के हताहत होने के अलावा है। उदाहरण के तौर पर पूर्व चेतावनी प्रणाली के बावजूद मई, 1990 में तटवर्ती आंध्र प्रदेश में आए तूफान में लगभग 967 लोगों, 24,000 पशुओं, 92,000 भेड़-बकरियों और 4.3 मिलियन पक्षियों की जानें गयीं। कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों को हानि 22,000 मिलियन रुपए की थी। इन हानियों के प्रभाव को कम करने के लिए राज्य सरकार द्वारा विश्व बैंक की सहायता से 7,136 मिलियन रुपए का एक विकास कार्यक्रम तैयार किया गया है। कार्यक्रम में सिंचाई सुविधाओं, नालियों, सड़कों, पुलों, चक्रवात आश्रयों, बिजली सुविधाओं, कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों, ग्रामीण जल सप्लाई, आदि की मरम्मत और रखरखाव, नागरिक सेवाओं, आवास, सार्वजनिक भवनों, तटवर्ती वृक्ष रोपण की व्यवस्था और तकनीकी सहायता शामिल हैं। संक्षेप में चक्रवात का मुकाबला करने के लिए पूर्व आभास प्रणाली का प्रयोग करते हुए पूर्व चेतावनी देने की मार्फत तैयारी अति आवश्यक है। चक्रवात आश्रयों को बढ़ाया जाना है। मध्य मौसम उपचारों, वैकल्पिक खेती प्रणालियों और मुआवजा कार्यक्रमों को तैयार किए जाने की आवश्यकता है और आवश्यक कच्चे माल समय पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इन प्रयासों से चक्रवात के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

**स्थानिक बाढ़**

स्थानिक बाढ़ पूरी तरह से एक भूखण्ड पर केन्द्रित रहती है। इसका कारण मानसून के दौरान किसी एक स्थान पर भारी वर्षा होना है। उदाहरण के तौर पर 1979 में, जबकि पूरे देश में सूखे का प्रकोप था; राजस्थान के लूनी तराई में बादल टूट पड़े। इसी प्रकार 1990 के जून महीने में दक्षिण पूर्व राजस्थान में ऐसी बाढ़ आयी।

**स्थानिक बाढ़ के प्रभाव**

स्थानिक बाढ़ से आम तौर पर नष्ट/दबी हुई निकासी प्रणालियां पुनः जीवित हो जाती हैं। छोटी-छोटी नदियां भरपूर बहती हैं। अनधिकृत तौर पर खेती किए जानेवाला काफी बड़ा क्षेत्र जो कि दबी हुई नालियों आदि का होता है, पुनः खाली हो जाता है। ऐसे क्षेत्रों में खोदे गए कुंओं को वर्षा का पानी भरपूर मात्रा में मिलता है। इससे भूमि पर रेत की परत चढ़ती है। निचले क्षेत्रों मे अच्छे सूक्ष्म पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव पड़ता है और उत्पादकता की हानि होती है। इसके अतिरिक्त मकानों, सड़कों, पुलों को नुकसान पहुंचता है और कई निचले क्षेत्रों में पानी खड़ा हो जाता है।

**स्थानिक बाढ़ के प्रबंध हेतु संभावित समाधान**

इस समस्या का समाधान भी इन शुष्क क्षेत्रों को उचित हरियाली से कवर करके रखना ही है। खेतों की चार दिवारियों को घास और पेड़ों से पाटना चाहिए। सूखी नदियों के आस-पास के क्षेत्र की खेती के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। इन नदियों के किनारों में पेड़ों की में लगाकर पक्का बनाया जाना चाहिए। सूख गई अथवा दबी हुई निकासी प्रणालियों पर खेती नहीं की जानी चाहिए।

**सारांश**

ये प्राकृतिक आपदाएं हैं जो सूखे अथवा बाढ़ के रूप में हमारी कृषि को प्रभावित करती हैं। सूखे का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता है और इस पर वैकल्पिक फसल प्रणालियों, प्रतिपूर्ति कार्यक्रमों, खाद्यान्नों और चारे के सुव्यवस्थीकरण, मानव और पशुओं के स्वास्थ्य की उचित देखभाल और गैर-सरकारी संगठनों को सक्रिय रूप से शामिल करके काबू पाया जा सकता है। दूसरी ओर नदियों में आई बाढ़ कम समय के लिए होती है लेकिन अधिक विनाशकारी होती है। नदियों में आई बाढ़ पर खेतों से पानी निकलने के बाद के समय के अनुकूल वैकल्पिक फसल नीति द्वारा काबू पाया जा सकता है। चक्रवात से आई बाढ़ से हुई हानि को शैल्टर बैल्ट रोपण, मानव और पशुओं की सुरक्षा के लिए चक्रवात आश्रयों का निर्माण, वैकल्पिक और प्रतिपूर्ति कृषि कार्यक्रम के लिए बीज सहित अन्य कच्चे माल की सप्लाई तथा महामारी का मुकाबला करने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था द्वारा कम किया जा सकता है।

**अनुवाद : शशी बाला**
**53 नीमड़ी कालोनी**
**दिल्ली-52**

# विकास के लिए बाढ़ नियंत्रण आवश्यक

□ सुनीता शर्मा □

देश के विकास में जहां प्राकृतिक साधन महत्वपूर्ण योगदान करते हैं, वहीं बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदा सम्पत्ति को नष्ट करके विकास के मार्ग में बाधक बन जाती है। कभी-कभी बाढ़ की विभीषिका का दीर्घकाल तक प्रभाव रहता है। जिस क्षेत्र में बाढ़ आती है उसकी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था चरमरा जाती है। जनजीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। नये सिरे से विकास की यात्रा शुरू करनी पड़ती है।

प्राकृतिक विपदाओं में बाढ़ अत्याधिक हानिकारक है। इससे प्रत्येक वर्ष हजारों जानें जाती हैं, करोड़ों की सम्पत्ति स्वाहा हो जाती है और कल-कारखानों व कृषि के उत्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। भारत में हर वर्ष किसी न किसी राज्य में बाढ़ से तबाही अवश्य मचती है। कृषि के लिए लाभदायी मानसून विनाश लीला करने वाला भी बन जाता है। मानसून अपने गर्भ में दोहरे प्रभाव लेकर आता है एक ओर समाज की सुख-समृद्धि तो दूसरी ओर बाढ़ का खतरा।

**बाढ़ क्यों और कैसे ?**

सामान्यतया बाढ़ मानसूनी वर्षा के आधिक्य के कारण नदियों का जल-प्रवाह बढ़ जाने से आती है। नदियों का जल किनारों को तोड़कर चारों ओर फैलने लगता है। जल का प्रवाह बढ़ने से फसलें ही नहीं गांव के गांव इसकी चपेट में आ जाते हैं। नदियों का जल स्तर गर्मी के कारण पहाड़ों की बर्फ अधिक मात्रा में पिघलने से भी बढ़ता है। पर्यावरण विशेषज्ञ प्रदूषण से प्रभावित ओजोन परत और उससे बढ़ते धरती के तापमान को बर्फ पिघलने का कारण मानते हैं। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि पृथ्वी का तापमान बढ़ता जा रहा है। इसीलिए यह संभावना निरंतर बढ़ती जा रही है कि बर्फ पिघलने से नदियों और समुद्र का जल स्तर बढ़ता जायेगा। इस प्रकार मानसून और बर्फ का पिघलना बाढ़ के दो प्राकृतिक कारण हैं।

मनुष्य ने प्रकृति पर विजय पाने का सदैव ही सफल-असफल प्रयास किया है। उसने जहां उच्चतम पहाड़ों को लांघा है, वहीं समुद्र की गहराइयों से सम्पदा का सृजन किया है। मनुष्य ने बांध बनाकर नदियों के प्रवाह को रोककर मनचाहे मार्ग पर मोड़ दिया है। बांध में पानी का अथाह भण्डार खतरे को संजोये रहता है। बांध के टूटने पर भयंकर बाढ़ का दृश्य उपस्थित हो जाता है जैसा कि 1961 में पनशेत (पूना) तथा 1979 में मोरवी में हो चुका है। इसीलिए भूकम्प पट्टी में आने की बात कहकर टिहरी बांध का बार-बार विरोध किया जाता है किन्तु बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई तथा बिजली उत्पादन के लिए बांधों का निर्माण अति आवश्यक है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दृष्टि से व्यापक प्रयास किये गये हैं। बड़ी संख्या में देश में बांधों का निर्माण किया गया है। इतने कम समय में इतने बांध और किसी देश में नहीं बनाये गये फिर भी समय-समय पर बाढ़ अपना विकराल रूप दिखा ही देती है। लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के प्रयत्नों से बाढ़ की अधिकता में कमी आयी है। गांव अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित हुए हैं।

**बाढ़ के दुष्प्रभाव**

बाढ़ से फसलें और पशुधन नष्ट होने के साथ-साथ विस्थापन की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। जिस कारण लोगों के सामने जीवनयापन की समस्या आ खड़ी होती है। जमा-पूंजी बाढ़ के साथ बह जाती है और आय का स्रोत भी चला जाता है। सीमान्त व छोटे किसानों तथा कृषि मजदूरों को तो अत्याधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इनके मकान भी प्रायः झोपड़ीनुमा या कच्ची मिट्टी के बने होते हैं इसलिए बाढ़ में इनका सब कुछ बर्बाद हो जाता है। निरन्तर वर्षा अथवा ऊपर से जल आपूर्ति के कारण अनेक बार बाढ़ का पानी गांवों में काफी समय तक रहता है। ऐसे में ग्रामीणों को और भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

एक ओर खेती नष्ट हो जाने से कृषि उत्पादन प्रभावित होता है, दूसरी ओर सम्पत्ति नष्ट होने तथा बाढ़ पीड़ितों को राहत के कारण आर्थिक बोझ बढ़ता है। इसीलिए राज्य प्राकृतिक आपदाओं से संरक्षण दिलाने के लिए व्यवस्था करता है।

बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों में लोगों के सामने रोजगार की समस्या खड़ी हो जाती है। रोजी-रोटी के सहारे बाढ़ में नष्ट

हो जाते हैं। लोग अपने ही परिवेश में विस्थापितों का सा जीवन जीने के लिए मजबूर होते हैं। बाढ़ में नष्ट होने वाले जान-माल की हानि की कल्पना करना कठिन होता है जिसके परिवार में से कोई बाढ़ के कारण काल का ग्रास बन जाता है, उसकी तो अकथनीय हानि होती है।

बाढ़ गांव और राज्य की अर्थव्यवस्था को पीछे धकेल देती है। अनेक राज्यों के पिछड़ेपन को बढ़ाने का मुख्य कारण हैं बाढ़-सूखे जैसे प्राकृतिक प्रकोप उत्तर प्रदेश, बिहार, असम आदि राज्यों में बाढ़ का प्रकोप अधिक रहता है। बाढ़ प्रभावित राज्यों में पुनर्स्थापन आदि पर अधिक व्यय करना पड़ता है, जिस कारण विकास कार्यों हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इस प्रकार ये राज्य विकास की दौड़ में पीछे रह जाते हैं।

सरकारी सूत्रों के अनुसार हर वर्ष औसतन 730 व्यक्तियों के अतिरिक्त 43 हजार पशु बाढ़ में मारे जाते हैं। हर वर्ष लगभग 10 लाख टन खाद्यान्न नष्ट हो जाता है। परिवहन व्यवस्था बिगड़ जाती है। उद्योग तथा व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार बाढ़ के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देश को भारी हानि वहन करनी पड़ती है। बाढ़ से देश के प्राकृतिक साधनों की भी हानि होती है।

से मुक्त करना जरूरी है। इसी दिशा में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लगातार प्रयत्न किये जा रहे हैं।

तटवर्ती बांध नदियों के किनारे के क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए प्रभावी उपाय हैं। इनसे बांध के सीमित क्षेत्र में बाढ़ का पानी सीमित कर दिया जाता है। उत्तर प्रदेश में बाढ़ सुरक्षा कार्य 1954 से बाढ़ नियंत्रण परिषद् की स्थापना के साथ प्रारम्भ किये गये। इस प्रक्रिया में आवश्यक स्थलों पर अनेक बांध बनाये गये हैं। इन बांधों से नदियों के प्रवाह को नियन्त्रित करना बहुत कुछ सम्भव हुआ है। बांधों पर बने जलाशय बाढ़ के पानी को रोककर सिंचाई तथा बिजली उत्पादन के कार्य में सहायक होते हैं। बाढ़ पर प्रभावी नियन्त्रण के लिए अभी आवश्यक स्थलों पर और भी बांध बनाये जाने की आवश्यकता है। वर्तमान में सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण के लिए 372 मध्यम तथा 182 बड़ी परियोजनाएं चल रही हैं। आठवीं योजना में सिंचाई, क्षेत्र विकास और बाढ़ नियंत्रण पर कुल परिव्यय 33055.57 करोड़ रुपये निर्धारित किया गया है। इसमें से बाढ़ नियंत्रण पर 1665.42 करोड़ रुपये व्यय किये जायेंगे।

छोटी नदियों में अपेक्षाकृत जल की मात्रा कम होने के कारण भारी वर्षाकाल में अचानक बाढ़ आ जाती है, जिससे

**तालिका**

**बाढ़ से हुई जन धन की हानि का विवरण**

| वर्ष | प्रभावित जनसंख्या (लाख) | जनहानि | पशु हानि (हजार) | प्रभावित फसली क्षेत्र (लाख हे०) | प्रभावित मकान (हजार) | लोक उपयोगिताओं की हानि (करोड़ रु०) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1975 | 314 | 685 | 17 | 38.5 | 794 | 166 |
| 1978 | 679 | 2350 | 216 | 93.4 | 3,507 | 376 |
| 1980 | 543 | 1885 | 59 | 55.6 | 2,531 | 293 |
| 1985 | 692 | 3536 | 336 | 63.7 | 3,642 | 384 |
| 1990 | 738 | 524 | 472 | 84.9 | 4,103 | 416 |

**बाढ़ नियंत्रण के उपाय**

नदियों के ऊपर बहुउद्देशीय परियोजनाओं के उद्देश्यों में बाढ़ नियंत्रण महत्वपूर्ण है। कृषि को बाढ़ से सुरक्षित कर सिंचाई सुविधा को बढ़ाने में इन बहुउद्देशीय परियोजनाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत की अर्थव्यवस्था ग्रामोन्मुखी है। अतः गांवों के विकास के लिए उनको बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपत्ति

भूमि कटाव होने के कारण फसल नष्ट हो जाती है। दलदल भी पैदा हो जाती है। इसलिए इन नदियों को उचित स्थानों पर गहरा, सीधा और चौड़ा करना आवश्यक है।

स्थान-स्थान पर नदियों पर बने तंग पुलों के कारण भारी वर्षा व बाढ़ के समय नदियों का जल स्तर ऊंचा उठ जाता है। परिणामस्वरूप भूमि का बड़ा भाग जलप्लावित हो जाता

है । ऐसी स्थिति दूर करने के लिए इन पुलों को चौड़ा करना जरूरी है । इसके लिए प्रयास भी किये जा रहे हैं । पुराने समय में बने तंग पुलों को यातायात में सुधार और बाढ़ नियंत्रण की दृष्टि से चौड़ा कर दिया गया है ।

वर्षाकाल में नदी नालों में पानी की मात्रा बढ़ने से भूमि कटाव की समस्या पैदा हो जाती है । एक अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष एक लाख एकड़ भूमि कटकर नदियों के उदर में समा जाती है । नदियों के इस प्रकार के कटान को रोकने के लिए भूमि संरक्षण हेतु सरकार द्वारा सुरक्षा योजना बनाई गई है ।

भारी वर्षा के अलावा सामान्य वर्षा से भी भूमि जल अवरोधन के कारण दुष्प्रभावित होती है । इस प्रकार के जल अवरोधन से सड़कों व रेलवे लाइनों आदि की भी भूमि प्रभावित होती है । इस कमी को दूर करने के लिए योजना बनाई गई है । इस योजना के अन्तर्गत नहरों के भराव क्षेत्रों में जल निकासी नालियों के निर्माण तथा साइफनों को चौड़ा करने का कार्य शामिल है ।

पहले समय में नदियों का पाट अधिक चौड़ा या बांध द्वारा पानी नियंत्रित करने के कारण नदियों की धारा संकुचित हो गई है । इन नदियों के किनारे की भूमि पर बढ़ती हुई जनसंख्या ने अपने आवास बनाकर अधिकार जमा लिया । इससे बाढ़ के पानी को निकलने का अवसर नहीं मिलता है और बाढ़ का प्रभाव बढ़ जाता है । इस दृष्टि से बाढ़ प्रभावित नदी के किनारे के क्षेत्रों का निर्धारण किया जाना चाहिए जिससे पूर्व सूचना मिलने पर ऐसे स्थानों को खाली कराया जा सके । आधुनिक समय में मौसम अध्ययन का पर्याप्त विकास हुआ है । इसके द्वारा वायुमण्डल में होने वाले परिवर्तनों की पूर्व सूचना प्राप्त कर ली जाती है । निकट भविष्य में आने वाले तूफान, आंधी, वर्षा आदि का समय से पहले पता चल जाता है । इसकी सहायता से संभावित बाढ़ के क्षेत्र के लोगों को चेतावनी देकर जानमाल के होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है । मौसम विज्ञान विभाग के सहयोग से रेडियो व दूरदर्शन इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं ।

वर्षाकाल में नदियों का जलस्तर ऊंचा रहने के कारण नदी-जल का बड़ा भाग समुद्र में बहकर चला जाता है या बाढ़ के रूप में तबाही मचाता है । इस दुष्प्रभाव को रोकने तथा पानी का समुचित सदुपयोग करने के लिए नदियों को जोड़ने की योजना बनाई गई है । इस योजना का नाम राष्ट्रीय जल ग्रीड रखा गया है । यह योजना विभिन्न नदियों के जल को जोड़ने में उपयोगी सिद्ध हुई है । बाढ़ के सम्बन्ध में प्रत्येक क्षेत्र की समस्यायें भिन्न होती हैं । अतः क्षेत्रीय आधार पर जन सहयोग से बाढ़ की समस्या का समाधान ढूंढा जाना चाहिए । ग्रामीण अंचलों के खादर क्षेत्रों में कृषकों को तकनीकी आदि सहायता देकर छोटे बांध बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिससे वे अपने खेतों की बाढ़ से रक्षा कर सकें । कृषकों को बाढ़ सम्भावित क्षेत्रों में ऐसी फसलें बोने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिनकी बाढ़ से न्यूनतम हानि हो ।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की प्रगति के लिए कृषि का विकास जरूरी है । कृषि के विकास के लिए खेतों को बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोप से बचाना अति आवश्यक है । बाढ़ सम्भावित क्षेत्रों में बाढ़ नियंत्रण के दूरदर्शी कदम उठाने होंगे अन्यथा हर वर्ष बाढ़ आती रहेगी और उसको लेकर चिन्ता व्यक्त की जाती रहेगी । इससे बाढ़ नियंत्रण का स्थायी समाधान नहीं हो सकता । बाढ़ को स्थायी रूप से रोक कर ही गांवों में खुशहाली लायी जा सकती है । मानवता की दृष्टि से भी यह जरूरी है । धरती को शस्य श्यामला बनाने के लिए बाढ़ जैसे अभिशाप से मुक्त करना ही होगा । इसी में सबका हित निहित है ।

**रिसर्च स्कॉलर**
**85, किशन गंज,**
**हापुड़-245 101 (उ.प्र.)**

# कृषि विपणन केन्द्र, जयपुर की प्रथम सामान्य सभा (जनरल बॉडी मीटिंग) के अवसर पर अध्यक्ष, माननीय ग्रामीण विकास राज्य मंत्री जी का भाषण

सम्माननीय सदस्यगण,

मुझे कृषि विपणन केन्द्र, जयपुर की प्रथम सामान्य सभा के अवसर पर आप लोगों का स्वागत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है। यह मेरे लिए प्रसन्नता का विषय है कि मैं इस केन्द्र का परिचय एक विशिष्ट संस्थान के रूप में दे रहा हूं। इसकी स्थापना भारत सरकार ने ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन सन् 1988 में की थी। यह एक विशिष्ट संस्था (सेंटर ऑफ एक्सीलेंस) के रूप में कृषि विपणन के क्षेत्र में कार्य करते हुए उत्तरोत्तर विकास कर रही है।

आप जानते ही हैं कि भारत की अर्थव्यवस्था की बुनियाद कृषि है और हमें इस नींव को मजबूत बनाने की कोशिश करनी होगी, हमें कृषि के क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाना होगा लेकिन उत्पादन बढ़ाने मात्र से ही समस्या हल नहीं हो जाती है। इसके लिए एक अच्छी विपणन प्रणाली का होना बहुत जरूरी है, जिससे किसान को उसके अनाज की उचित कीमत मिले और उसे और ज्यादा कृषि उत्पादन के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हो।

मैं चाहता हूं कि कृषि विपणन का समन्वित विकास किया जाए, ताकि उत्पादकों और उपभोक्ताओं के आर्थिक हित सुरक्षित हो सकें।

यह हर्ष का विषय है कि कृषि उत्पाद की अधिकतर थोक मंडियों का विनियमन किया जा चुका है। मैं चाहता हूं कि छोटे किसानों के हित में प्राथमिक ग्रामीण मंडियों के विकास पर और ज्यादा ध्यान दिया जाए। इसी तरह से उत्पादकों को सीधा लाभ पहुंचाने वाली उत्पादक स्तर पर श्रेणीकरण योजना का विस्तार किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त राज्यों द्वारा पास किए गए कानूनों में एकरूपता लाने की भी आवश्यकता है। इस उद्देश्य से एक "मॉडल एक्ट" सभी राज्यों को उनके मार्गदर्शन के लिए भेजा गया है। मैं उम्मीद करता हूं कि राज्य सरकारें इस दिशा में सार्थक कदम उठायेंगी।

हमारा यह प्रयास भी होना चाहिए कि उपभोक्ताओं को शुद्ध श्रेणीकृत पदार्थ दैनिक जीवन में मिलते रहें। यह साधारण तौर पर एगमार्क प्रमाणीकरण के माध्यम से किया जाता है। इसे उपभोक्ताओं के हित में स्वैच्छिक तौर पर लागू किया जाता है। लेकिन कृषि उत्पाद (श्रेणीकरण और चिन्हांकन) अधिनियम को 1986 में संशोधित किया गया था और उसमें यह अधिकार दिया गया कि कुछ पदार्थों का श्रेणीकरण उपभोक्ताओं के हित में आवश्यक रूप से किया जाना चाहिए।

यह खेद की बात है कि उपभोक्ताओं को "एगमार्क" और उसकी अच्छे स्वास्थ्य के लिए उपयोगिता के बारे में पूरी जानकारी नहीं है। हमारे उपभोक्ता अपने अधिकारों के बारे में अनभिज्ञ हैं और उन्हें सरकार द्वारा उनके हित में चलाए जा रहे कार्यक्रमों की पूरी जानकारी नहीं है। इस दिशा में राज्य सरकारों, स्वयंसेवी संस्थाओं और प्रचार माध्यमों को सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

मुझे यह उल्लेख करते हुए हर्ष हो रहा है कि कृषि विपणन केन्द्र जयपुर ने शैशव अवस्था में सराहनीय कार्य किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि आधुनिक संसाधनों के अभाव में यह केन्द्र विभिन्न जटिल समस्याओं से भी गुजर रहा है जिसका निदान अति आवश्यक है। केन्द्र अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील है। इस केन्द्र के माध्यम से अब तक 21 प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशालाएं आदि आयोजित की गयी हैं और 600 अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

इस केन्द्र द्वारा तैयार की गई परियोजनायें एवं किए गए अध्ययन कार्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। अभी तक केन्द्र ने छः परियोजनायें एवं अध्ययन कार्य पूर्ण किए हैं। जिसमें राजस्थान राज्य कृषि विपणन महायोजना, दिल्ली कृषि विपणन महायोजना, उत्तरी पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्रों में फल सब्जियों का विपणन का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त, केन्द्र ने आन्ध्र प्रदेश, मेघालय, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश का मास्टर प्लान बनाने तथा अनाज एवं फल-सब्जियों का हैदराबाद एवं सिकन्दराबाद में विपणन का अध्ययन करने का कार्य अपने हाथों में लिया है।

भारत सरकार ने इस कृषि विपणन केन्द्र जयपुर के विकास के लिए प्रथम चरण में 11.66 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया है। राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध भूखंड पर केन्द्र भवन का निर्माण कार्य शीघ्र प्रारम्भ करवाया जायेगा। आशा है भविष्य में केन्द्र जल्दी ही अपने भवन में कार्य करना प्रारम्भ कर देगा और राष्ट्र के सामने आने वाली कृषि विपणन की चुनौतियों और समस्याओं के समाधान में सक्षम योगदान दे सकेगा। अपने उद्देश्यों के प्रति समर्पित इस केन्द्र की प्रगति के लिए मैं सभी सदस्यों को शुभकामनायें देता हूं।

"जय हिन्द"

(ग्रामीण विकास राज्य मंत्री श्री उत्तम भाई ह. पटेल का भाषण)

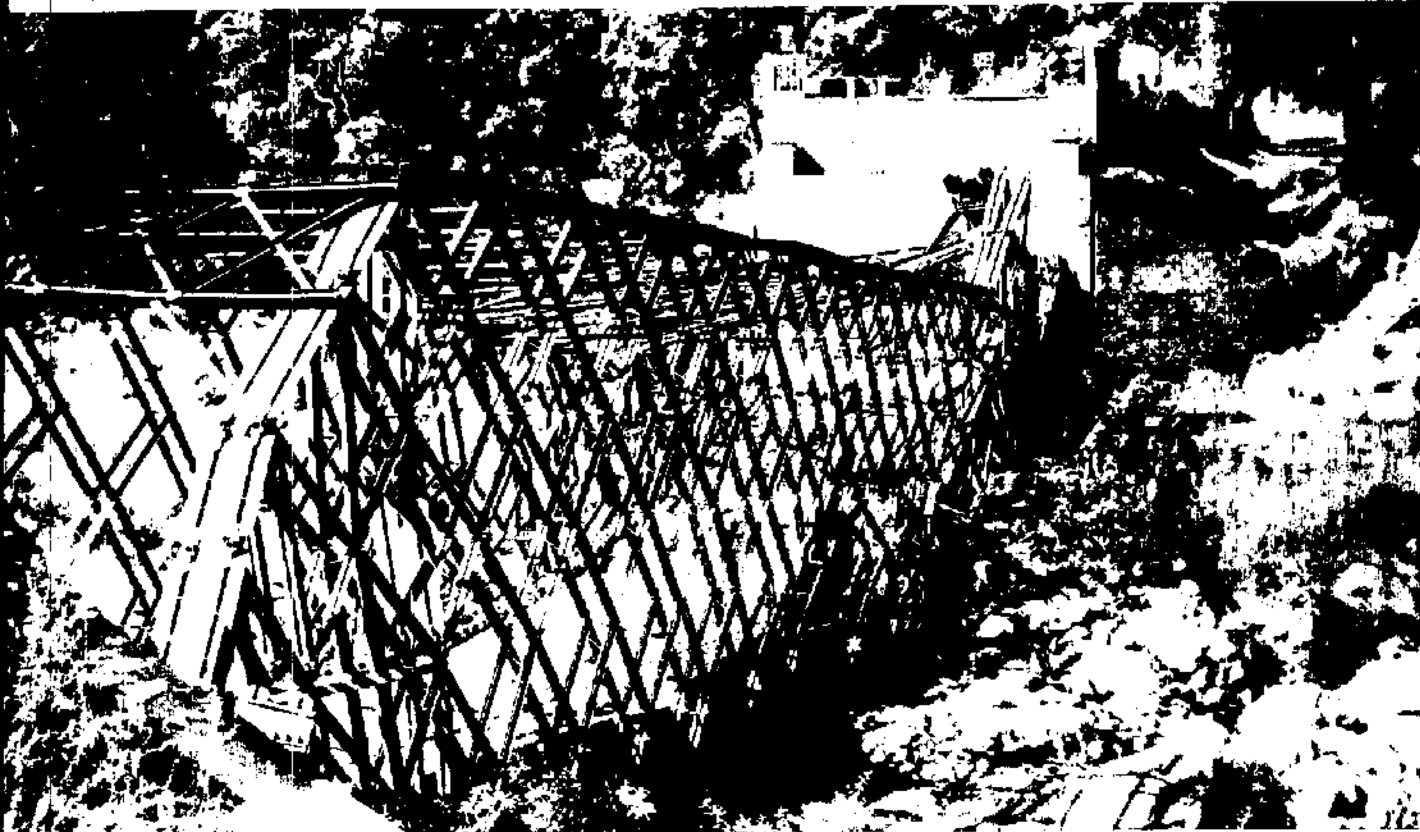

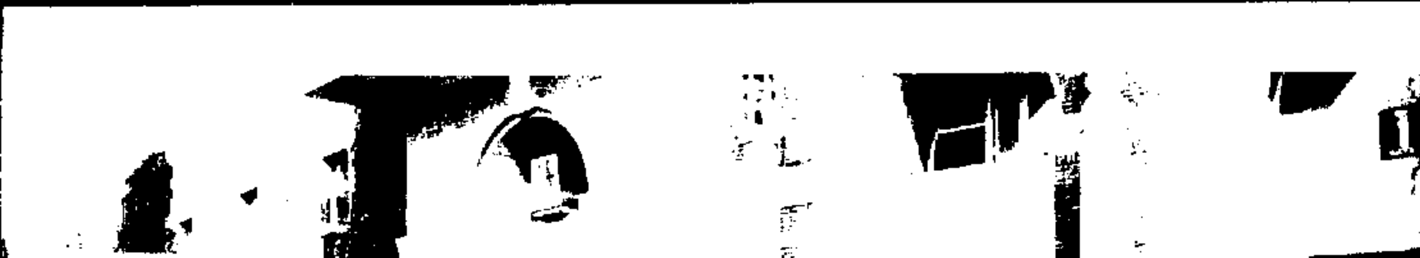
L.G.V.
DL1L
9561

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/92
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/
P & T Regd. No. D (DL) 12057/
Licenced under U (DN)
to post without pre-payment at DPSO, Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित